प्रकाशक—
रामतीर्थ प्रतिष्ठान
(श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग)
२५ रामतीर्थ नगर, लखनऊ



मुद्रक—
पं० शिवशंकर भार्गव
फ़ाइन प्रेस
१४ होवेट रोड, लखनऊ

निवेदन

हर्ष का विषय है कि इस वर्ष हम स्वामी राम के समग्र ग्रन्थ—लेख व उपदेश के दो भाग, एक 'वेदान्तशिखर से' और दूसरा 'धर्म-तत्त्व' प्रकाशित करने में समर्थ हुए हैं। अब मुख्यतः केवल एक ही भाग—अरण्य संवाद शेष है, जिसके छपने पर प्रथम प्रकाशित स्वामी रामतीर्थ ग्रन्थावली के २८ भागों का द्वितीय संस्करण समाप्त हो जायगा और राम-प्रेमी स्वामी राम के समग्र ग्रन्थों का भले प्रकार पारायण कर सकेंगे। अरण्यसंवाद भी प्रेस में दिया जा चुका है और आशा है, वह भी शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगा।

अन्त में, सभी राम-प्रेमियों से सानुरोध आग्रह है कि वे सदा की भाँति इस अनुपम साहित्य के प्रचार में हमारा हाथ बटाते रहें। ॐ

श्रीरामतीर्थ प्रतिष्ठान
अनन्तचतुर्दशी
सं० २००९

रामेश्वरसहायसिंह एम.एल.ए.
मंत्री

विषय-सूची



पाँचवाँ भाग

धर्म-तत्त्व

धर्म

शान्ति आश्रम, मथुरा में स्वामी राम का व्याख्यान

अंग्रेजी में 'धर्म' को 'रिलीजन' कहते हैं। व्युत्पत्ति के अनुसार 'रिलीजन' शब्द का अर्थ है 'पीछे बाँधना' अर्थात् जो हमें पीछे लौटा कर हमारे आदि स्रोत से बाँध देता है, वही धर्म है।

प्रश्न—हमारा मूल या आदि स्रोत क्या है? वह कौन सी शक्ति है, जिसके वशवर्ती होकर मन सोचता है, आँख देखती है और प्रकृति अपना काम करती है?

उत्तर—वह जो मन-बुद्धि, नेत्रों तथा अन्य ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा अनुभव में नहीं आता, किन्तु मन-बुद्धि, नेत्रों एवं अन्य इन्द्रियों को अपने अपने काम में प्रेरित करता है, ब्रह्म कहलाता है। वह हमारे अनुभव या विचार का विषय नहीं हो सकता। मन-बुद्धि और वाणी को उस पर विचार करते समय घबराकर पीछे लौटना पड़ता है।

हमारे हाथ का चिमटा प्रायः सभी वाह्य वस्तुओं को पकड़ सकता है, किन्तु क्या चिमटे के लिए लौटकर हमारे हाथ की उन उँगलियों को पकड़ना सम्भव है, जो चिमटे को सम्भाले हुए हैं। इस लिए मन और बुद्धि से यह किसी प्रकार आशा नहीं की जा सकती कि वे उस अज्ञात, अचिन्त्य तत्व को जान सकेंगे जो स्वयं उनका मूल स्रोत है।

ऐसी स्थिति में हमें 'धर्म' और कर्मकाण्ड का भेद समझना होगा और उसमें से रूढ़िजन्य प्रथायें पृथक करनी होंगी। तब हम देखेंगे कि 'धर्म' वास्तव में एक यौगिक विधान है, जिसके अनुसार मन,

और बुद्धि बाह्य जगत से पीछे लौटकर उस अज्ञात-अचिन्त्य मूल स्रोत में लय हो जाता है।

जब कोई ईसाई भक्त या पवित्र-हृदय मुसलमान ईश्वर की प्रार्थना के लिए तैयार होता है तब उसके हाथ अपने आप अज्ञात रूप से ही ऊपर उठ जाते हैं मानों वह किसी ऊपर के, अपने से बाहर के, अज्ञात तत्व को पकड़ने की चेष्टा कर रहा हो। हिन्दू जब भक्ति में लीन होता है अथवा समाधि में बैठता है तब अपने आप प्रवृत्तः उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वह अदृश्य, अज्ञात तत्व हमारे भीतर है, जिसमें हमारा मन और बुद्धि डूबना चाहती है।

धर्म अनेक नहीं, एक है; वही हिन्दुत्व, इस्लाम और ईसाईयत की जान है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो इस धर्म का एक अर्थ है उस अज्ञात का, मन-वाणी से अगोचर का साक्षात्कार, जहाँ न जाति-पांति रहती है और न रंग-रूप, जहाँ न मतमतान्तर रहते हैं, न सिद्धान्त और उपसिद्धान्त, न मन-वाणी, न देश-काल और न कार्य-कारण, न इहलोक रहता है और न कोई अन्य काल्पनिक परलोक, जहाँ ये सारी बातें और इनके अन्तर्गत जो कुछ सम्भव हो सकता है, वह सब कुछ साफ हो जाता है, सब कुछ उसमें लीन हो जाता है, जहाँ शब्द की पहुँच नहीं हो सकती उसका साक्षात्कार ही धर्म है। क्या इसमें कोई रहस्य है? नहीं, बिल्कुल नहीं।

जिस मनुष्य ने सचमुच कभी धार्मिक अनुभव प्राप्त किया हो वह अपने उस क्षण की याद करे जिसे समाधि की अवस्था कहते हैं और फिर बतावे कि उस घड़ी में अपने-पराये की, संसार की यहाँ तक कि ईश्वर की भी याद रहती है या नहीं। यथार्थ साक्षात्कार की अवस्था में मैं और तू का प्रपंच, दृष्टा और दृश्य का भेद काफूर हो जाता है। उपर्युक्त आदर्श को प्राप्त कराने वाले किसी भी वैधानिक प्रयास को राम धार्मिक समझता है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि ऐसे रहस्यमय लक्ष्य को प्राप्त करने की क्या आवश्यकता है। किन्तु इस प्रश्न का उत्तर ढूँढने के पहले आइये, हम इस बात की जाँच करें कि मनुष्य के हृदय को आकर्षित करने वाले मुख्य आदर्शों की जैसे ज्ञान, वीरता, प्रेम, सुख आदि की प्राप्ति साधारणतः हमें कैसे होती है।

१—साधारणतः हम ज्ञान से उन बातों या तथ्यों का अर्थ लगाते हैं, जो हमें बाह्य उपकरणों जैसे पुस्तकों या शिक्षकों के द्वारा प्राप्त होते हैं। और उस मनुष्य को हम बड़ा विद्वान समझते हैं जिसने अपने समय के सुप्रसिद्ध एवं विद्वतापूर्ण ग्रन्थों से अपने मस्तिष्क को भर लिया हो अथवा उन्हें कंठाग्र किया हो। हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं कि हमें भूतकाल की सफलताओं की अवहेलना न करना चाहिए, वरन् सावधानी से उनका अध्ययन करना चाहिए किन्तु हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि वास्तविक शिक्षा तो उस समय प्रारम्भ होती है, जब मनुष्य सभी प्रकार की बाह्य सहायताओं से मुँह मोड़कर अपने अन्तर के अनन्त स्रोत की ओर अग्रसर होता है। बस, ऐसी दशा में एक से एक नये विचार उसके हृदय से निकलते हैं, वह मानो मौलिक विज्ञान का प्राकृतिक चश्मा बन जाता है। न्यूटन तथा अन्य सत्यान्वेषकों ने अनेक लाभदायक आविष्कारों का सम्पादन किया है। आप यह बतलाइये कि ये सच्चाइयाँ जो उनके पहले मनुष्य को प्राप्त न थीं, उनको किन पुस्तकों से प्राप्त हुई थीं? इन बातों को उन्होंने कहाँ से, किस गुरु से सीखा था? सच्ची बात तो यह है कि मनुष्य-जाति के इन उद्धारक महापुरुषों की शिक्षा या जिज्ञासा अज्ञात रूप से ही हमारी उस वास्तविक आत्मा तक पहुँच गई, केवल जिसके द्वारा ही समस्त अनसुना सुना जाता है, न जाना हुआ जाना जाता है, न सोचा हुआ सोचा जाता है। उसके द्वारा प्रकाश अपने आप फूट निकलता है जिसका मन एकाग्र होता है। एकाग्र होने का अर्थ है कि वह अपने क्षुद्र अहंकार (अहम्) को भूल जाता है, उसे अपने तन-मन-बुद्धि

आदि किसी की सुधि नहीं रहती, ऐसी दशा आ जाती है, जहाँ संसार, अहम्वृत्ति और उसका सारा पसारा अज्ञात और अचिन्त्य परम तत्व में लीन हो जाता है। बस, ऐसी स्थिति प्राप्त होने पर ही, उसके पहले कदापि नहीं, सच्चाइयों की वर्षा होने लगती है, नये नये आविष्कार प्रकट होते हैं; ज्ञान की धारा फूट निकलती है, प्रकृतिदेवी के नूतनतम रहस्य सामने दृष्टिगोचर होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि ऊपर धर्म का जो स्वरूप बतलाया गया है, उसे जिस यौगिक साधन का रूप दिया है, संसार की समस्त सच्चाइयाँ, शोध, आविष्कार, सिद्धांत और उपसिद्धांत—सबके सब प्रकृतत: उसी स्थिति से प्रकट होते हैं। जहाँ कवि एक बार उस समाधि-चेतन की अवस्था में पहुँचा नहीं कि एक से एक दिव्य विचार, एक से एक श्रेष्ठ भावनायें उसकी काव्य-धारा में फूटी नहीं। चाहे कवि हो या दार्शनिक या गणितज्ञ—जो भी अपने प्रत्यक्ष अहम् भाव को भूल जायगा, वही जटिलतम समस्याओं का आश्चर्यमय समाधान करके दिखा देगा। जब कोई समस्या हल हो जाती है, कोई आविष्कार हाथ आ जाता है तब हमारी यह प्रत्यक्ष 'मैं' उसका श्रेय लेने के लिए उत्सुक हो उठती है। किन्तु ध्यान रहे कि जब तक हमारे अन्त: करण में यह अधिकार चाहने वाली, स्वत्व जमाने वाली 'मैं' का अस्तित्व विद्यमान रहता है तब तक कभी किसी प्रकार का आविष्कार नहीं हो सकता। केवल उसी समय जब 'मैं' का लोप हो जाता है, धर्म की वह दशा प्राप्त हो जाती है जिसका संकेत ऊपर किया गया है, केवल तभी सफलता और ज्ञान का प्रादुर्भाव होने लगता है।

२—आओ, अब किसी रणक्षेत्र में चलकर किसी वीरात्मा का अध्ययन करें। वह अपनी अलौकिक शक्ति से मानों पागल सा हो रहा है, वह हजारों की परवाह नहीं करता, उसे अपने शरीर की सुधि नहीं है। सचमुच इस समय वह न शरीर है और न मन, यहाँ तक कि वह बाह्य संसार से भी बेखबर है। है केवल जोश ही जोश, उसके शरीर

का प्रत्येक रोयाँ पुकार-पुकार कर कह रहा है कि इस समय वह उस परम आत्मा में डूबा हुआ है, जो शरीर-मन और समस्त संसार के तल में सदैव विद्यमान रहता है। देखने वाले उसके दुर्जय साहस और असीम वीरता को देखकर दंग है, जो न जाने कहाँ से उसके द्वारा प्रकट होकर उनकी आँखों को विजली के समान चकाचौंध कर रही है, किन्तु यदि योद्धा से स्वयं उसकी वीरता का पता पूछा जाय तो उसका वह दुर्धर्ष शौर्य उसको उसी प्रकार अज्ञात होगा, जैसे समाधि में, धर्म के वास्तविक स्वरूप में, पर्दे के पीछे रहने वाली सर्वात्मा में सब कुछ लीन रहता है।

२—प्रेम का शब्द कितना प्यारा है! प्रेमी से सभी प्रेम करते हैं, कौन भला सच्चे भक्त की भक्ति नहीं करता! सच्चे हिन्दू को अधिकांश अवसरों पर भक्ति का ही एकमात्र सहारा रहता है। कुछ ऐसी श्रेष्ठ आत्मायें होती हैं, जो ईश्वर की भक्ति के लिए, भगवान् की सेवा के लिए अपना सब कुछ, अपना सर्वस्व सहर्ष बलिदान करने के लिए तत्पर रहती हैं। आइये, हम इस भक्ति के मूल के स्रोत की शोध लगायें।

चैतन्य महाप्रभु या 'वनयन' जैसे आदर्श भक्तों की ख्याति इसी लिए हुई कि प्रार्थना के समय वे असाधारण रूप से समाधिस्थ या आत्मविह्वल हो जाते थे। और यहां यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि जिस हृदय में ईश्वर-भक्ति इतने जोर से उमड़ती है उसके लिए लोक-लज्जा अथवा सांसारिकता का कोई प्रश्न ही नहीं रहता। वह अपने क्षुद्र अहम् के बन्धनों से सर्वथा मुक्त हो जाता है। किन्तु ऐसे दिव्य पुरुषों की बात छोड़ दीजिये, उन पुरुषों को देखिये, जिन्हें सांसारिक पदार्थों से ही सच्चा प्रेम करने का सुअवसर मिला है, वे भी अपने अनुभव से बतला सकते हैं कि प्रेम की परमावधि में न प्रेमी रहता है और न प्रेमिका। निस्संदेह यह विचित्रता है किन्तु होता ऐसा ही है! तात्पर्य यह कि प्रेम भी उपर्युक्त धर्म के स्वरूप से एकरूप है—इस से इन्कार नहीं किया जा सकता।

४—परमानन्द के लिए अंग्रेजी में एक शब्द हैं 'इक्सटेसी' (ecstasy)। व्युत्पति के अनुसार इसका अर्थ होता है—बाहर खड़ा होना। और वास्तव में आनन्द है क्या ? चाहे जो अवस्था हो, चाहे जो परिस्थिति हो, तन-मन-बुद्धि और इस दृश्य संसार से बाहर निकलने का ही दूसरा नाम आनन्द है। यदि हम अपने अनुभवों की छानबीन करें तो हम कह सकेंगे कि जब हम द्वैत के बंधन से—चाहे वह थोड़ी देर के लिए ही क्यों न हो—मुक्त हो जाते हैं तभी हमें आनन्द की प्राप्ति होती है। इच्छित वस्तु और इच्छा करने वाला—जब दोनों मिलकर एक हो जाते हैं तभी आनन्द प्रकट होता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि आनन्द के स्वरूप में और धर्म के स्वरूप में पूर्ण एकता है।

इन तथ्यों के निरीक्षण से यही स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि जीवन के सभी श्रेष्ठ एवं चिरभिलपित लक्ष हमें तभी प्राप्त होते हैं जब हमारी मन-बुद्धि और उसके साथ ही यह सम्पूर्ण दृश्य जगत् उस अज्ञान तत्व में लीन हो जाता है।

किन्तु इस प्रकार—इस प्रकार की साधनाओं से हम उस सर्वव्यापक सार्वभौमिक तत्व में केवल क्षण भर के लिए गोता लगा लेते हैं, जैसे शब्दकोष में प्रवेश करके हम एकाध शब्द का अर्थ जान लेते हैं, अथवा जैसे समुद्र में गोता मारने से गोताखोर के हाथ में तुरन्त ही एकाध मोती आजाता है।

भोग-विलास से प्रकट होने वाला विषयानन्द भी, यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो तत्वतः धर्ममय होता है। किन्तु जिस ढंग से इन भोग-विलासों में हमें धर्म की प्राप्ति या अनुभव होता है उसकी तुलना उस ढंग से की जा सकती है जैसे कोई गंदी नाली के झरोखे से दरबार का सौंदर्य देखने की चेष्टा करे। ये भोग-विलास तो बिजली की उन कौंधों के समान हैं जो तत्व रूप से व्यापक सूर्य प्रकाश से एकरूप होते हुए भी, भलाई की अपेक्षा बुराई अधिक करते हैं। भोग-विलास की उपमा के लिए

एक सुन्दर कहानी है जिसमें प्रीमेथियस ने स्वर्ग से अग्नि चुराने की चेष्टा करके अनेक यातनायें सही थीं'।

अब प्रश्न यह है कि क्या इस परम कल्याणमय दरबार में नियमित द्वार से प्रवेश पाना संभव नहीं है? क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है जिसके द्वारा अर्द्धनिशा की विद्युत झलक को अनादिकालीन दिवाप्रकाश में परिणत किया जा सके। हमारे हृदयों में अपने आप ऐसी इच्छा विद्यमान रहती है और इसीलिए साधारणतः हमारे लिए धर्म की आवश्यकता होती है। जो इस उद्देश की प्राप्ति के लिए कठिन प्रयास करते हैं वे निस्संदेह प्रशंसनीय हैं और जो धर्म की इस महत्ता का तिरस्कार करते हैं, वे मानो जानबूझ कर अपनी इच्छा के विरुद्ध आत्मघात में लगे हुए हैं।

दर्शनशास्त्र अथवा विज्ञान ने इस अनिर्वचनीय तत्व का रहस्य जानने के लिए जितने अधिक प्रयास किये हैं, वे सब बुरी तरह असफल हुए हैं। देश-काल और कार्यकारण-संबंध—इन पर चाहे दृष्टा और दृश्य के दृष्टिकोण से विचार किया जाय, उनका वास्तविक स्वरूप समझने में नहीं आता। पदार्थ, गति या शक्ति का अन्तिम स्वरूप खोजते समय अन्वेषक-मस्तिष्क के सामने ऐसी घोर बाधायें उपस्थित होती हैं, जिन को पार करना असम्भव हो जाता है। 'एटोमिक थियरी' अणुमन्तव्य में स्वयं विरोध उत्पन्न होता है। यही हाल अन्त में वैज्ञानिक बोस्कोविच के 'गति-केन्द्र' मन्तव्य का हुआ। संसार के जितने भी प्रमाणाधारित धर्म विज्ञान प्रचलित हैं उन सब पर किसी न किसी अंश में विचारहीनता की छाप लगी हुई है। एक दर्शनशास्त्र दूसरे दर्शन का खण्डन और निन्दा करता है। दूसरा उसी रूप से बदला लेने में कोई बात उठा नहीं रखता। इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति का अन्तरंग बुद्धि के लिए सदैव रहस्यपूर्ण ही रहेगा। दूसरे शब्दों में समष्टि की गहराई का पता लगाना मानवी बुद्धि से परे की बात है। तो क्या धर्म

स्थिति में समष्टि के आधारभूत इस निरपेक्ष तत्व की खोज करने से हमें सर्वथा निराश हो जाना चाहिए ? क्या हमको अपना सारा बल और सारी शक्ति व्यावहारिक चीजों, जैसे रेलतार अथवा विनाशक बारूद और बमों की शोध और आविष्कार में ही लगाना चाहिए। किन्तु इन खिलौनों से भी तो पूरा नहीं पड़ता, उनसे शान्ति नहीं मिलती। हर एक नई वस्तु प्राप्त होने पर और और नई वस्तुओं की प्राप्तिके लिए हमारे हृदय में जो अनिवार्य लालसा जाग्रत् होती है, मानों वह जोरदार शब्दों में सांसारिक आकांक्षाओं की तुच्छता हमारे सामने प्रकट करती है।

इन विचारों से हम घोर निराशा में पड़ जाते हैं। किन्तु उपनिषद् कहते हैं—निराश मत हो। शान्ति के लिए तुम्हारे हृदय की अन्तर्तम आशा कभी व्यर्थ न जायगी। इस सत्य तत्व के विरुद्ध हम अपनी आंखें चाहे जितने हठ से बन्द रखें, एकान्त के कुछ सुखद क्षणों में ऐसे प्रश्न बरबश हमारे समाने आ जाते हैं जैसे, आखिर, संसार का यह सारा पसारा कहां से प्रकट हुआ है ? मैं कौन हूं, अथवा मैं हुआ ही क्यों ? इस विशाल पृथ्वी और अनन्त आकाश का प्रयोजन क्या है ?

वेद कहते हैं कि हमारे हृदय में बद्धमूल इस प्रश्न का कोई न कोई समाधान अवश्यमेव निकलना चाहिए, यद्यपि दर्शन, विज्ञान अथवा सांसारिक प्रेम से यह कार्य नहीं हो सकता। यह प्रश्न वास्तव में स्वयं उसी अनिर्वचनीय माया का अंश है जिसे वह हल करना चाहता है। जैसे कोई बाज़ उस आकाशमंडल को पार नहीं कर सकता, जिसके भीतर वह उड़ता है, उसी प्रकार हमारी विचारशक्ति अपनी सीमा के क्षेत्र को पार नहीं कर सकती। जब तक प्रश्न-कर्त्ता और जिनके बारे में प्रश्न किया जाता है वे—ऐसा द्वन्द्व रहेगा, तब तक माया के कारागार की दीवारें नहीं टूट सकतीं और न हम दृश्य-पदार्थ से ऊपर उठ सकते हैं। हमारा यह आदर्श एक विशेष साधना से प्राप्त किया जा सकता हैं, किन्तु जब उसकी प्राप्ति हो जाती है तब वहां न प्रश्न का नामोनिशां

रहता है और न उत्तर का। इसी आदर्श को प्राप्त करना वेदान्त का लक्ष है, किन्तु सांसारिक प्रेम, सुख आमोद-प्रमोद—ऐसी बातों से उसका कोई संबंध नहीं होता, क्योंकि इनका तरीका गुलामी बढ़ाने वाला है। जिसकी ऐसी अद्वैत दृष्टि हो जाती है, वह स्वयं ब्रह्म है, जो मन और बुद्धि से नहीं जाना जा सकता। जो मनुष्य इस ब्रह्म के दर्शन भर कर लेता है, वह भय और चिन्ता से मुक्त हो जाता है। जिसे ब्रह्म साक्षात्कार हो जाता है अथवा जिसे धर्म की प्राप्ति होती है, उसका चरित्र ऐसा निर्मल हो जाना चाहिए जो किसी प्रकार हिलाया नहीं जा सकता।

इसीलिए 'धर्म' हम सब के लिए अपेक्षित है।

ॐ ॐ ॐ



छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति और विश्वव्यापी प्रेम

भारतवासियों के लिए, संसार के लिए राम का संदेश।

जब कभी भारतवर्ष में कोई होनहार आन्दोलन उठाया जाता है तभी दलबन्दी का भाव सर्वसाधारण का ध्यान नेता के चरित्र सम्बन्धी दोषों की ओर खींचने लगता है। इस प्रकार प्रत्येक फूल खिलने के पहले ही कलिका रूप में मुरझा जाता है। त्रुटियाँ किस में नहीं हैं? स्वामी विवेकानन्द की स्वास्थ्यकर एवं आशाजनक योजनाओं तथा निर्भीक उपदेशों का तिरस्कार इसलिए किया जाता है कि स्वामीजी यह खाते-पीते हैं, वह खाते-पीते हैं। यही हाल काशी के स्वामी कृष्णानन्दजी का हुआ। एक आपत्ति-जनक व्यवहार सर्वसाधारण के सामने उनके मत्थे मढ़ा गया, जो वास्तव में उनका था भी नहीं और उनकी जुबान बन्द कर दी गई। इसी प्रकार जो व्यक्ति साधारण धर्म-प्रचार और धर्म महोत्सव के कामों में अगुआ हुआ है, उस पर भी कतिपय व्यक्तिगत त्रुटियों का आरोप करके साधारण धर्म-प्रचार और धर्म-महोत्सव के अधिवेशनों से लोगों को विरत किया जा रहा है। गधे से गिर पड़ने पर गधे के हाँकनेवाले से झगड़ना, निस्सन्देह विलक्षण तर्क है!

एक बार राम ने देखा—एक दूध बेचनेवाला छोकरा एक घर में दूध की कुछ बोतलें लिये जा रहा है। संयोग से एक बोतल उसके हाथ से फिसल कर टूट गई।

वह क्रोध से ऐसा भड़का और शेष बोतलें भी उसने सड़क पर पटक दीं।

अपने परस्पर के बर्ताव में भी लोग ठीक ऐसा ही व्यवहार करते

हैं। अपने मित्र की छोटी मोटी किसी विशेष बात में त्रुटियों को देखते ही उसके सद्गुणों पर पानी फेर देने की कैसी प्रबल प्रवृत्ति हमारे हृदय में जाग्रत् हो उठती है।

जल-गणित विद्या में किसी पिण्ड पर दो प्रकार के दबाव माने जाते हैं, एक सम्पूर्ण दबाव और दूसरा लब्ध दबाव। किसी पिंड पर सम्पूर्ण दबाव असीम और लब्ध दबाव शून्य हो सकता है। भारत में बहु-संख्यक शक्तियों का कोई लब्ध दबाव प्रकट नहीं होता, क्योंकि वे एक दूसरे के विरुद्ध खड़ी होने से अकारथ हो जाती हैं। क्या यह स्थिति करुणा-जनक नहीं है ? इसका कारण क्या है ? यही कि हरएक दल अपने पड़ौसी के दोषों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करता है। इस प्रकार मेल कभी नहीं हो सकता। संदेहात्मक आधार पर दोषारोपण की प्रवृति ही एक दुष्ट शक्ति के रूप में हमारे बीच आपत्ति जनक अयोग्य चरित्रवाले मनुष्यों को पैदा करने लगती है। "किसी को चोर कहो और वह चोरी करने लगेगा" यह एक निर्विवाद स्वतः-सिद्ध सच्चाई है।

क्या हमारे आधार में कोई सामान्य सिद्धान्त नहीं है ? क्या हमारे पड़ौसियों में कोई प्रशंसनीय गुण नहीं होते ? क्या भारत के विभिन्न दलों में एकता का कोई बन्धन नहीं है ? शुद्धता या अशुद्धता के नाम पर हमें ईश्वर की खुफ़िया पुलिस के स्वयं-निर्वाचित सदस्यों का अभिनय करके किसी ऐसे मनुष्य के व्यक्तिगत चरित्र में झाँकने का क्या अधिकार है जिसका सार्वजनिक चरित्र देश के लिए उपयोगी सिद्ध हो रहा है ?' व्यक्तिगत आचरण का प्रश्न तो उसके और परमेश्वर के बीच का प्रश्न है। हम उसमें हस्तक्षेप करने वाले कौन हैं ? दूसरों के गुण-दोषों पर विचार करने में हमारी शक्ति का जितना अपव्यय होता है, वह हमें अपने आदर्शों के अनुसार जीवन-निर्वाह करने में लगाना चाहिए। क्या बाहरी दबाव के द्वारा मनुष्य एक पग भी सदाचार के

मार्ग में आगे बढ़ सकता है ? अथवा क्या प्रशंसा की अभिलाषा करने वाला लोकाचार और लोकमत के अनुसार चलनेवाला आचरण शुद्ध-पवित्र कहा जा सकता है ? ऐसे आचरण को पवित्रता के साथ मत मिलाओ, इस प्रकार का आचरण तो दुर्बलता है।

क्या काँटों के कारण हम गुलाब को त्याग देते हैं। हलवाई चाहे भूली खाकर ही पेट पालता हो, किन्तु इस कारण हम उसकी बनाई मिठाई खाना नहीं छोड़ देते। जो वस्तु हमारे भीतर (पेट में) जाती है उसके कारण हम भ्रष्ट नहीं होते किन्तु जो हमसे बाहर है वही बिगाड़ती है। यदि स्वामी विवेकानन्द किन्हीं विशेष वस्तुओं को खाते और पीते हैं तो इससे क्या ? जब तक उनके द्वारा हमें उत्तम उपदेश मिलते हैं, तब तक हमें यह परवाह नहीं, कि उनके पेट में क्या जाता है। शिक्षक के व्यक्तित्व से हमें कोई प्रयोजन नहीं, हमें तो उसकी शिक्षाओं और परामर्शों को उनके गुण-दोषों को परख कर के ग्रहण करना चाहिए। रेखागणित के तत्वों से 'यूक्लिड' के व्यक्तित्व का क्या सरोकार है ? चित्रकार कुरूप है, इसलिए क्या हमें उस के बनाये हुए सुन्दर चित्र का तिरस्कार करना चाहिए ? सर फ्रांसिस बेकन घूसखोर थे तो क्या इस कारण से हमें उसके तर्क शास्त्र के अन्तर्गत आनुमानिक सिद्धान्त (Inductive Logi;) फेंक देना चाहिए ? आज इस बीसवीं सदी में यह बड़ा उत्तम समय आया है कि हम बुद्धि से काम लें और व्यक्तियों और उनके उपदेशों में विवेक करना सीखें। गंदी तलैया में उगने के कारण क्या हमें सुन्दर कमल का तिरस्कार कर देना चाहिए ?

भारत की दरिद्रता का सबसे बड़ा कारण यह है कि हम कूड़ा-कर्कट की अवहेलना करते हैं, मृतक पशुओं की हड्डियों को छूने से डरते हैं। एक प्रकार के नासिका-आरोग्य विज्ञान के चक्कर में पड़कर उन सब चीजों से नाक-भौं सिकोड़ते हैं, जो गंदी कहलाती हैं। इन्हीं तुच्छ चीज़ों के उपयोग से ही यूरोप एवं अन्य सभ्य देश समृद्धिशाली

बने हुए हैं। क्या सुन्दर पुष्प-वाटिकायें मैलो खाद से तैयार नहीं होतीं, काले धुएँ वाले मैले कोयले के सदुपयोग से ही अमेरिका तथा यूरोप के लोहे के तथा अन्य कारखानों में अद्भुत शक्ति पैदा की जा रही है। राम की श्रेष्ठता इस बात में थी कि उन्होंने तुच्छ बन्दरों को एक अद्भुत सेना में परिणत किया था। पवित्र और विशुद्ध आत्माओं के साथ कौन प्रेमपूर्वक मिल-जुल कर नहीं रह सकता? किन्तु महात्मा तो वह है, जो अपनी विशाल सहानुभूति और मातृवत् हृदय के आलिंगन में नीचों को भी समेट लेता है।

देखिये, अपनी सच्ची आत्मा के सूर्य पर पाकशाला के और क्षुद्र अंध विश्वासों के धूल-झंझावात का ग्रहण मत लगने दीजिये, अन्यथा हम अपने जीवन का अपव्यय करके आध्यात्मिक और शारीरिक दोनों प्रकार के अधःपतन के भागी होंगे। निस्संदेह शोचनीय है वह चौके-चूल्हे का धर्म, जो अनन्त, अमर आत्मा को किसी विदेशी की चपाती-शोरबे से मलिन होता मान बैठता है। कृपया इन जीर्ण-शीर्ण जाति-परिधानों के तले देखिये। तुम हो क्या? सर्वात्मा अनन्त,अनघ और अमर आत्मा तुम्हारा अपना आप है। वास्तव में इस आन्तरिक साम्य की उपेक्षा करना ही संसार के सारे प्रकट उत्पातों को उत्पन्न करती है।

पथभ्रष्ट और सनकी नीति-शास्त्र-विशारद उपदेशक अपने पड़ौसियों के व्यक्तिगत आचरणों की निन्दा और विरोध करके मानों केवल नदी के ऊपरी तल से झाग और फेन दूर करने की चेष्टा करते हैं, वे उस असली कारण तक नहीं पहुँचते जो नदी की तली में विषमता के रूप में विद्यमान है।

जिनका अधःपतन हो चुका है उनके उद्धार के लिए दौड़धूप करने वाले तुम हो कौन? क्या स्वयं तुम्हारा उद्धार हुआ है?

क्या तुम इस तथ्य को जानते हो कि जो अपने जीवन को बचायेगा

वह उसे खो देगा। क्या तुम पतितों में से हो? क्या तुम पतितों में होना चाहोगे या हो सक्ते हो? तो उठो और उद्धारक वन जाओ।

बुद्ध भगवान् प्रायः एक वेश्या के घर में आतिथ्य ग्रहण करते थे? अंग्रेजी पुस्तक "हू विल कास्ट दी फर्स्ट स्टोन" का लेखक सर्वथा बदनाम मेरी मेगडालीन की संगति से कभी लज्जित नहीं हुआ। ऐ प्रतिष्ठाहीन प्रतिष्ठा की भावना! जब तक हम एक दूसरे के दोषों पर जोर देते रहेंगे तब तक देश में कभी प्रेम और मेल मिलाप नहीं हो सकता। कौशलपूर्ण सफल जीवन-यापन का रहस्य इस बात में है कि हम अपना हृदय माता के समान उदार बना लें। माता के लिए अपने सभी बच्चे अयाने और सयाने प्यारे होते हैं। सच्ची शिक्षा का अर्थ है विश्व को परमेश्वर के नेत्रों से देखने का अभ्यास करना।

प्रत्येक व्यक्ति को एक दशा में होकर गुज़रना पड़ता है, जैसे पार्थिव जगत् में शिशु को बाल, कौमार, यौवन आदि अवस्थाओं को पार करना पड़ता है, ठीक उसी तरह नैतिक और आध्यात्मिक जगत में भी शिशु आदि अवस्थायें आवश्यक, नहीं अनिवार्य हैं। पापी कहे जाने वाले व्यक्ति मेरे नैतिक शिशु हैं, और शिशु में क्या अपनी निराली छवि नहीं होती? जिन्हें तुम भ्रमवश "पतित" कहते हो उनका अभी "उत्थान नहीं" हुआ है। वे विश्वविद्यालय के नवागान्तुक हैं, जैसे तुम भी कभी रहे हो।

कुछ लोग एक ओर तो विश्वव्यापी प्रेम के बारे में बहुत हो-हल्ला मचाते हैं, और दूसरी ओर अपने नेत्र अपने आश्रितों के चरित्र संबंधी दोषों पर गड़ाये रहते हैं और अपनी इस असंगति को—पाप से घृणा करो और पापी से प्रेम करो—ऐसे वचन की छाया में छिपाते हैं।

मेरे प्रिय भारतवासियो! जब तक तुम किसी में भद्दापन, कुरूपता देखोगे तब तक तुम उससे कभी प्रेम नहीं कर सकते। प्रेम का अर्थ है सौंदर्य के दर्शन करना।

अन्धकार के साथ लड़ाई लड़ने से अंधकार कभी दूर न होगा। अँधेरे कमरे में यदि हम चारों ओर ढेले फेंकते रहें, दायें और बॉयें डंडा फटकारें, कांचों को तोड़ डालें, मेज़ को लौट-पौट दें, स्याहीदान लुढ़का दें, बराबर कोसते और कलपते रहें, किन्तु क्या इससे कमरे का अन्धकार दूर हो जायगा? भीतर प्रकाश ले जाइये और अँधेरा कभी था ही नहीं! इसी प्रकार निषेधात्मक छिद्रान्वेषण तथा तेज को ठण्डा करने वाली, उत्साह को मन्द करनेवाली बातों से कभी हालत न सुधरेगी। हालत सुधारने के लिए आवश्यक है एक सुनिश्चित प्रफुल्लित, आशाजनक, प्रेमपूर्ण, उत्साह-वर्द्धक दृष्टिकोण। यदि नालियों का सारा कीचड़ सड़क पर फैला दिया जाय तो क्या उसका फल अच्छा हो सकता है? कदापि नहीं। इसी प्रकार दूसरों के दोषों पर ज़ोर देने से कभी कोई भलाई न होगी। शान्ति और सद्भाव रूपी ताजे जल की धारा बहाओ और सारी गंदगी अपने आप धुल जायगी। कहावत है कि अकबर ने एक लकीर खींच कर अपने चतुर दरबारी बीरबल से कहा कि इस लकीर को बिना काटे छोटा कर दो, उसे किसी ओर मिटाओ मत। बीरबल ने उसी के समानन्तर एक बड़ी रेखा खींच दी। अकबर की रेखा छोटी हो गई। बस, यही सुन्दर ढग है। बड़ी रेखा खींचना बुद्धिमानी का काम है। जिस तरह बीरबल ने अकबर के हृदय में विश्वास करा दिया था कि उसकी रेखा छोटी हो गई, उसी तरह लोगों को को भीतर से वैसी ही प्रेरणा करा दीजिये जो आप उन्हें बाहर से कराना चाहते हैं। छिन्द्रान्वेषण, आलोचना के नाम पर चीखना, चिल्लाना तो इस प्रकार की मूर्खता है कि कमल का यह फूल पीपल के पेड़ में क्यों नहीं बदल जाता। हमें हर एक वस्तु में सौंदर्य देखना चाहिए। बुरों पर भौंको मत, भलों की सुन्दरता गाओ। मैं तो जीवन के सभी अंगूरों से मधुमय मद्य निकाल लेता हूँ।

प्यारे छिद्रान्वेषक! मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, किन्तु जिसमें तुम छिद्र निकालते हो, उसे भी मैं उतना ही प्यार करता हूँ।

संघर्ष

जीवन-संघर्ष में विजयी कौन होता है ? प्रेम।

जो जातियाँ अपने हृदयों को एक सूत्र में जोड सकती हैं, अपने मस्तिष्कों को एक स्वर में बाँध सकती हैं, और अपने हाथों को प्रेमपूर्ण सेवा में लगा सकती हैं, उनकी जनसंख्या चाहे थोड़ी ही हो, वे विभिन्न दिशाओं में काम करने वाले संघर्ष में सदा विजयी होती हैं।

संघर्ष तीन प्रकार का है:—(१) असमान से, (२) समान से, और (३) प्रकृति के विरुद्ध।

जहाँ जहाँ ईर्ष्या-द्वेष, प्रति-स्पर्द्धा और दलबन्दी के वशीभूत होकर अपने 'समान' से संघर्ष करने में शक्ति का अपव्यय करने के बदले 'समान' से मैत्री स्थापित करली जाती है, वहां 'असमान' के साथ संघर्ष में विजय सदा निश्चित रहती है।

"सर्व प्रकार के अत्याचारों का प्रारम्भ दयालुता से होता है", यह कहावत इतनी सच्ची है कि उसकी सत्यता में सन्देह नहीं से सकता।

और जहाँ 'असमान' के साथ भी प्रेम का पोषण किया जाता है, वहां प्रकृति के साथ संघर्ष में विजय और सफलता निश्चित हो जाती है, प्रकृति के तत्त्वों पर विजय पाना सहज हो जाता है, और प्रकृति के साथ संघर्ष करने का अर्थ है कि हम स्थूल जगत् के स्तर पर भी उस परमतत्त्व का अनुभव करते हैं कि "मैं ही सब की शासक आत्मा हूँ"।

छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति संसार में इतनी व्यापक क्यों है ?

छिद्रान्वेषण अर्थात् किसी में दोष देखने की प्रवृत्ति आक्रमणात्मक जान पड़ती है, किन्तु यह अधिकतर रक्षणात्मक आत्म-रक्षा की प्रेरणा से प्रकट होती है। किसी स्वभाव या अभ्यास को छोड़ने के लिए, उसके समस्त कुपरिणामों को प्रदर्शित करने वाली तीव्र समालोचना आवश्यक होती है। जब हम दूसरों को उस कुटेव में फँसा पाते हैं तब स्वभावतः

इस संक्रमणात्मक संसर्ग के भय से, उनकी संगति से बचने की चेष्टा करते हैं। नई टेव और नए विचार का निर्माण दृष्टि और प्राचीन टेव और विचार दृष्टि का विनाश साथ-साथ चलता है। जब तक दुनिया में उन्नति के लिए गुंजायश रहेगी तब तक तुलना और समालोचना की वृत्ति भी बराबर बनी रहेगी। वस्तुतः समालोचना और तुलना करने की यह प्रवृत्ति अवांछनीय नहीं है, और न उसका मूलोच्छेद ही संभव है, किन्तु अवांछनीय तो है उसमें भरा हुआ हलाहल विष, जो पक्ष-विपक्षवालों को 'व्यक्तित्व' की भावना से सम्पन्न कर देता है, उन्हें 'व्यक्ति' मानने लगता है। हमें इस वध करने योग्य क्षुद्र "मैं" को परे फेंक देना चाहिए, क्योंकि अकेले इसी के द्वारा हममें और दूसरों में पाप कर्म की संभावना होती है; सभी प्रकार के पाप-ताप से मुक्त होकर हम अपने चारों ओर के सभी कर्मों और पुरुषों को वैज्ञानिक निष्पक्षता और दार्शनिक शांति से देख सकते हैं, जैसे कि रासायनिक या वनस्पति शास्त्र विशारद हरएक वस्तु को अत्यन्त शान्त चित्त से, यथार्थ रूप से और सूक्ष्मता से जाँचते हैं और उन्हें अपने निरीक्षणस्थ पौधों और द्रव्यों में उलझ जाने का कभी कोई भय नहीं होता परख सकते हैं जैसे सर्वसाक्षिन् सूर्य झाड़ियों और गुलाबों, ऊसर और बगीचों, स्त्री और पुरुषों, पशुओं और पौधों, चींटियों और मेवों, सबको एक समान देखता और सहायता देता है।

जैसे महामारी से बचने का एकमात्र उपाय है आरोग्यशास्त्र के नियमों के अनुसार चलना, उसी प्रकार विद्वेशजन्य राजनीति से रक्षा पाने का एकमात्र मार्ग है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य के नियम के अनुसार अपने पड़ोसी के प्रति प्रेम के नियम के अनुसार जीवन यापन करना है।

यदि हम केवल उचित त्याग करने के लिए तैयार हों तो समृद्धि-शाली होना उतना ही सहज है जितना कि दुर्दशा ग्रस्त अभागी होना। "बलिदान से विपत्ति टल जाती है", यह कहावत आज भी उतनी ही

सत्य है जितनी कि सुन्दर प्राचीन युग-युगान्तरों में थी, किन्तु यहाँ बलिदान का अर्थ निरीह निरपराध पशुओं की बलि से नहीं है। उसका अर्थ है हमारी दलबन्दियों का जाति-गत भेद-भावनाओं का, ईर्ष्या-द्वेष का, प्रेम की वेदी पर हवन कर देना जिस प्रेम के द्वारा हमें इसी लोक में स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है।

समालोचित पुरुष के प्रति

छिद्रान्वेषण समालोचना समानता का आवाहन करनेवाली होती है। वह परमात्मा की काट-छाँट करनेवाली प्रक्रिया है, जो हमें अधिक सुन्दर बनने में सहायता देती है। समालोचना छिद्रान्वेषण की कैंची का स्पर्श होते ही भीतर घुसकर टटोलो ज़रा तुम्हारे हृदय में कैसी उथल पुथल है। उस समय क्षुद्र भावनाओं में उतरने की प्रवृत्ति उदय होती है और बस, यही सावधानी का अवसर है। एक हलकी सी डोंगी में सवार मनुष्य के जो वेगवती और चट्टानों से घिरी हुई संक्षुब्ध जलधार में अज्ञात समुद्र की ओर बहती जाती है स्थिति की भयंकरतायें सदा चौकन्ना बनाये रखती हैं। ज्योंही उसकी नौका किसी चट्टान से भिड़ने को होती है, वह पूर्ण सतर्क हो उठता है। यदि ऐसी मुठभेड़ उपयोगी न होती तो कौन इन की परवाह करता। जिसे हम पीड़ा समझते हैं वह तो हमें सावधान करने के लिए आवश्यक सूचना है, सजीव प्राणियों को ऐसे उत्तेजनाओं की आवश्यकता होती है।

मित्रों की हो या शत्रुओं की हो, कष्टकर समालोचना स्वप्न का हौवा के समान है जो तुम्हें अपने सच्चे स्वरूप, अपने ब्रह्मत्व में जगाती है। जाग पड़ने पर स्वप्न का जूजू कहाँ रहता है? वह तो कभी था नहीं, प्रेम के विधान के अनुसार ज्यों ही हम अपने आपको ठीक ठाक कर लेते हैं, त्यों ही सारी हानियाँ पूर्ण लाभ में परिणत हो जाती हैं। एक अंग्रेजी किस्सा है कि बेचारी सिंडरेला ने अपनी चप्पलें खो दीं, उसकी

निद्रोपिता ने उसे उसकी चप्पल भी दिला दी और घाते में आजीवन साथी (पति) के रूप में सम्राट भी उसे मिल गया।

जब हम 'सर्व' से अभेद होते हैं, तब धोखेबाज हमारे पास आने का साहस नहीं कर सकते। चोर उसी घर में घुसते हैं, जहाँ अँधेरा होता है। जिस मनुष्य में लोगों के नेता होने की योग्यता होती है वह सहायकों की मूर्खता, अनुयायियों की कृतघ्नता, जाति की अश्रद्धा, जनता की गुण-ग्राहकहीनता की शिकायत कदापि नहीं करता। ये बातें तो जीवन के महान् कौतुक में चलती ही रहती हैं. इनका सामना करना तथा निरुत्साहित होकर और हार मानकर इनके सामने नत-मस्तक न होना ही शक्ति का अन्तिम प्रमाण है। अनावश्यक संघर्षण की व्यर्थ रगड़ और घिसन से बचे रहो, फिर ऐसा कौन सा काम है जो संतोषजनक रीति से पूरा नहीं हो सकता ?

O Love, Sweet Love,
For ages and ages Thou gavest me the dor.
Now hiding behind the foes and friends,
Now disappearing in the criticisms and praise.
Now lost in pleasures and pride,
Concealed in troubles and pains,
Then out of sight in life's hard trials,
Forgotten in the midst of losses and gains.
O Love ! Sweet Love !
For ages and ages Thou gavest me the dor.

Percussions, concussions of trials and joys,
Hard blows and knocks, all smiles and sighs,

With a wondrous chemistry, with a strange,
Electricity
A purifying process, a disengaging analysis,
From loves and hatred, concerns, attachments,
clingings,
Repulsions, from the ore of passions,
Brought out of my heart, a Radium of Glory,
O what a strange story !
O Love, Sweet Love,
For ages and ages Thou gavest me the dor.

ऐ प्रेम ! ऐ मधुर !
युगों से तू मुझे झाँसा दे रहा है।
कभी मित्रों और शत्रुओं के पीछे तू लुकता है,
कभी प्रशंसा और विपरीत आलोचना (निन्दा) में तू गायब हो जाता है।
अब सुख और गर्व में तू भूल जाता है,
दुखों और पीड़ाओं में तू छिप जाता है,
तब तू जीवन की कठिन परीक्षाओं में अदृश्य हो जाता है,
हानियों और लाभों के बीच में तू विस्मृत हो जाता है,
ऐ प्रेमात्मा ! मधुर प्रेम !
युगों से तू मुझे झाँसा दे रहा है।

मुसीबतों और हर्षों के आघात और धक्के,
सब कठिन प्रहार और ठोकरें सब मुसकानें
और आहें,

रहित अद्भुत रसायन-शास्त्र और
विलक्षण विद्युत के,
शोधक प्रक्रिया और पृथक कारी विश्लेषण से,
प्रेम और द्वेष, सम्बन्धों, अनुराग, और
लगनों से,
निराकरण से और मनोविकारों की खान से.
मेरे हृदय से निकाल जाए, प्रकाश की देदीप्यमान किरण,
अरे कैसी अद्भुत यह कहानी है !
ऐ प्रेम ! मधुर प्रेम !
युगों से तू मुझे झाँसा दे रहा है।

From my Radium of heart,
X Rays do start,
To the objects of all sorts
Transparency impart
On all sides and parts.
What a marvellous Art ?
O Love, Sweet Love ?
For ages and ages Thou gavest me the dor.

—:o::o:—

Sarcasms so sharp,
All shakings and props;
Foes, friends, and shops
Your hiding walls
No more opaque,

Reveal you all.
O jewel of jewels!
My self, Radium pure,
Thou burnest as fuel
All caskets and purses,
Valice, trunks and curses,
Doors, locks and boxes—
All possessions obnoxious.
O Truth, Radium pure!
O Self, omnivorous sure!
O Love, Sweet Love!
For ages and ages Thou gavest me the dor-

मेरे हृदय की देदीप्यमान रश्मि (रेडियम्; Radium) से
एक्स रेज़ * निकलती है,
सब तरह के पदार्थों को ;
सब ओर और भागों को ;
पारदर्शिता प्रदान करती हैं ।
कैसा अद्भुत कौशल (हुनर) है !
ऐ प्रेम, मधुर प्रेम,
युगों से तू मुझे झाँसा दे रहा है !

अति तीखे ताने (सनिंद उपालंभ)
सब हिलोरें (आकुलता) और अवलंब (आश्रय, आधार)

*XRays (अनुसंधान कारिणी प्रकाश किरणें) ।

शत्रु, मित्र और दूकानें
तुम्हारी छिपानेवाली दीवालें,
जो अब अपारदर्शक नहीं रहीं,
सब तुम्हें व्यक्त (प्रगट) कर देती हैं।
रत्नों के रत्न !
मेरे आत्मा, विशुद्ध महाप्रकाश स्वरूप (रेडियम्) !
तू ईंधन की भाँति जलाता है
सब डिबियाँ और थैलियाँ,
वेलिस (valice), पेटियाँ और अभिशाप,
कपाट, ताले और बक्स—
सब अधीन मिलकियतें।
ऐ सत्य स्वरूप विशुद्ध रेडियम् !
ऐ निश्चित ,सर्वभक्षी स्वरूप !
ऐ प्रेमात्मा, ऐ मधुर प्रेम स्वरूप !
युगों और युगों से तू मुझे झाँसा दे रहा है।

स्वच्छ (सम्यक्) दृष्टि

बच्चे हर एक वस्तु को व्यक्तित्व प्रदान करते हैं, अपने जैसा व्यक्ति समझते हैं। उनको मेघ की गरज सामने के किसी दूरस्थ क्रुद्ध मनुष्य की घुर्घुराहट मालूम होती है। इससे उनकी कल्पना नहीं की जाती। कुछ और बड़े बच्चे, जिनके संसर्ग में आते हैं उन सब को वे अविकसित या अर्द्ध विकसित व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। जब कोई वस्तु उन्हें अपने विरुद्ध जाती मालूम होती है, तब प्रेम के विधान के अनुसार अपना बर्ताव ठीक करने के बदले परिस्थिति से बखेड़ा करने लगते हैं। जैसे कोई अदृश्य सिरे पर बैठे मित्र से बुरी खबर सुन कर टेलीफोन रिसीवर को तोड़ने की इच्छा करे।

आस्ट्रेलिया के काले निवासियों का ऐसा विश्वास है कि गूढ़ यंत्र-मंत्र तथा ऐसे ही अन्य प्रयोगों से जिन्हें 'मेलका' कहते हैं, वे स्वयं पानी बरसाया करते हैं। एक विश्वसनीय ऐतिहासिक ने लिखा है कि "जब यात्रा में अत्युग्र उष्णदेशीय वृष्टि-तूफानों से हम घिर जाते थे तब हमारे काले अनुचर अपने उन अपरिचित साथियों पर बहुत बिगड़े" जो बिना अवसर वर्षा किया करते थे। जो अपने पड़ोसियों के अपराधों पर किसी भी रूप से बिगड़ते और परेशान होते हैं वे इन्हीं आदिम प्राचीन कृष्णवर्ण निवासियों के समान तमसाच्छन्न अज्ञानी हैं। वृष्टि होती है और इस वृष्टि का कारण प्रकृति के निरहंकार नियम के सिवा और क्या हो सकता है। फूल खिलता है, मानों वही अहंकार शून्य प्राकृतिक नियम प्रादुर्भाव में आता है ठीक इसी तरह ईसा को धोखा देनेवाले जुदास प्रेम का नियम ही अपनी पूर्ण शक्ति के धोखे की नियत से भरे हुए चुम्बन में भी, यद्यपि वह इस रहस्य को जानता न था, काम करता था। प्रेम के नियम के सिवा वहाँ और कौन सा नियम हो सकता था। उस मिथ्या चुम्बन के बाद जो घटना हुई उसके बिना ईसा को अब तक कौन याद करता ?

मनोहर जोज़ेफ अपने क्षमा मांगनेवाले भाइयों से कहता है—"मुझे कुएँ में फेंकनेवाले तुम नहीं थे, तुमने मुझे कुएँ में नहीं डाला था। प्रेम स्वरूप प्रभु को ही मिश्र में मेरी प्रभुता बढ़ाने के लिए, मेरे सगे भाइयों से बढ़कर कोई प्रेमी साथी नहीं मिले। हरएक वस्तु मेरे गिनते और देखते ही देखते इतनी तेजी से, इतनी जल्दी बदलती, दौड़ती और उड़ती हुई मालूम होती है कि मैं किसी भी पदार्थ को स्थिरता और व्यक्तित्व का जामा नहीं पहना सकता। फिर मैं समालोचना किस की करूँ सारा दृश्य ऐसा है जैसे चपला की चकाचौंध में पूरे वेग में दौड़ती हुई रेलगाड़ी या उड़ता हुआ मेघ है। हम उसे अचल या स्थिर समझने लगते हैं। जब अधिक जानकारी होती है तब हम कुछ और ही सोचते हैं। इसी तरह हम लोग माया के चंचल प्रकाश में

वस्तुओं को देखकर केवल उतने आधार पर स्थिरता, व्यक्तित्व तथा अधिकार का भाव जमा लेते हैं। यही सांसारिक बुद्धिमता है। नित्य-सत्य-स्वरूप और आन्तरिक अनन्तस्वरूप के प्रकाश में वस्तुओं को देखो और तुम स्वयं अमर शान्ति के साथ एक हो जाओगे।

मानवजाति के तर्क-वितर्क और वादानुवाद सदा व्यर्थ सिद्ध होते हैं। वादविवाद से भेद भावों को मिटाने के प्रयत्न मात्र फूट, असंतोष और विकलता पैदा करते हैं। क्यों? विशाल भवन उठाने से पहले नींव ठीक तरह पर नहीं रक्खी जाती। पहले हृदय को वश में करो, फिर बुद्धि पर प्रभाव डालो। जहाँ युक्ति नहीं चलती, वहाँ प्रेम के जीतने की संभावना रहती है। कहानी में हवा उस पथिक से कोट न उतरवा सकी थी, किन्तु गर्मी ने उतरवा दिया था।

लोग विचारों और मतों की एकता के लिए आवश्यकता से अधिक उत्सुक रहते हैं। वे आत्माओं की एकता की प्रत्याशा नहीं करते। अंग्रेज़ी में एक सुन्दर शब्द है "अंडर-स्टैंडिंग" जिसका अर्थ समझना है उसके एक खण्ड अंडर का अर्थ है नीचे और दूसरे स्टैंडिंग का खड़े होना। अर्थात् समझने का अर्थ है बाह्य रूपों और क्षणिक चित्त वृत्तियों के नीचे खड़े होना। यह समझना प्रेम द्वारा ही सम्पन्न होता है। जब तक तुम हृदय से सबका भान नहीं करते, तब तक तुम सब को नहीं जान सकते। तुम्हें सोचने-विचारने की उतनी ज़रूरत नहीं है जितनी नीचे बैठने, भीतर पैठने की है। यदि प्रेम कानून भंग करता है, तो वही क़ानून की पूर्ति है। यदि कोई दूसरी वस्तु कानून भंग करती है तो विप्लव और क्रान्ति मच जाती है। प्रेम ही एकमात्र दैवी विधान है। दूसरे क़ानून तो संगठित डकैतियाँ हैं। केवल प्रेम को ही क़ानून तोड़ने का अधिकार है। प्रेम का अधिकार दैवी अधिकार है; क़ानून का अधिकार ग़ैरकानूनी है।

ए भारत के राजनीतिज्ञो! तुम अभी तक विरोधी समालोचनाओं

५८५

और जली-कटी शिकायतों से काम लेते रहे हो, किन्तु अवस्था दिन प्रति-दिन बिगड़ती जाती है। अब तुम्हें ठीक उपाय से काम करने का यत्न करना चाहिए। यदि एक पक्ष ने अन्याय किया तो बदले में अन्याय करने से केवल पहली कालिख में एक कालिख और जुड़ जायगी, किन्तु वह सफ़ेदी नहीं बना सकती। एक वयोवृद्ध सज्जन एक लड़के को तमाचा लगानेवाले थे, क्योंकि उसने उनका अपमान किया था। डपटते हुए बोले—"मूर्ख! तू बदतमीज़ी क्यों करता है?" लड़के ने उत्तर दिया—"श्रीमान्! आपके कथनानुसार 'मूर्ख' होने के कारण मैंने शरारत की। पर आप तो बुद्धिमान् हैं, अपने योग्य बर्ताव कीजिये।"

जब कोई विद्युत्पूर्ण पिंड दूसरे पिंड के संस्पर्श में न आकर केवल उसके निकट में पहुँचता है, तब उसका दूसरे पिंड पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे विद्युत धार का प्रभाव कहते हैं, जो बिलकुल उलटा होता है, अर्थात् यदि प्रथम पिंड में धनात्मक विद्युत् होती है तो दूसरे पिंड में ऋणात्मक बिजली पैदा हो जाती है। यदि आप सजातीय विद्युत् पैदा करना चाहते हैं तो उसके लिए वास्तविक संस्पर्श होना चाहिये। अतएव जाति और वंश की भावनाओं की पारदर्शक टट्टियाँ हमारे हृदयों का मेल नहीं होने देतीं। ऐसी स्थिति में तुम युक्ति और तर्क से अपने विवादस्पद मामले को निपटाना चाहते हो, तब तुम विद्युत्-धार के उस सामीप्य में आजाते हो, जिसके फलस्वरूप परिणाम तुम्हारे इच्छित परिणाम के ठीक विपरीत होता है। तुम किसी मनुष्य को उस समय तक नहीं पहचान सकते, जब तक पहले तुम उसे प्यार न करो। जहाँ युक्ति की दाल नहीं गलती, वहाँ प्रेम को आशा हो सकती है।

धर्मों, मतों और उपाधियों को लोग गले की शोभा के लिए तावीजों की भाँति धारण करते हैं। और इन तावीजों में सभी प्रकार के गुण और शक्तियाँ बतलायी जाती हैं, तथापि जो थोड़ी बहुत सफलता हमें अन्त में मिलती है, उसका उनके उन लाड़ले तावीजों से कुछ भी

सरोकार नहीं होता। हमें अपने मनुष्यत्व का उद्धार करना चाहिए और अपने इच्छित अन्धविश्वासों से ऊपर उठना चाहिए। नाम और रूप के इन खिलौनों से तुम कब तक चिपटे रहोगे ?

हाँ, तुम्हें एक के बाद एक अपने सभी दुलारे पक्षपातों, अधिकारों, अनुरागों और आसक्तियों को त्यागना पड़ेगा। अभी तो तुम्हारे अधिकार और सम्पत्ति तुम पर अधिकार जमाकर तुम्हें गुलाम बनाये हुए हैं। किसी चीज़ या व्यक्ति पर केधिकार जमाने में तुम स्वयं उस अधिकार के चक्कर में पड़ जाते हो। तुमको दुखदायी मालूम होनेवाले तुमको सब प्रकार से नंगा करनेवाले त्याग में ही आनन्दमय सफलता का भांडार छिपा हुआ है। राम को 'हरि' ईश्वर का सबसे प्यारा नाम लगता है, इसका शब्दार्थ है लुटेरा। ऐ प्यारे लुटेरे ! कुछ लोग शायद आपत्ति करें "ओह ! यदि हम प्रेम करें और शत्रु की शरण जावें तो वह हमें खा जायगा"। राम कहता है—"ऐ तू माया-मुग्ध कपटी क्या कभी सचमुच तू ने इस प्रयोग की परीक्षा की है ?"

जीवन के सभी द्वारों पर लिखा हुआ है कि पुल (pull) खींचों किन्तु तुम उसे गलत पढ़कर उसे पुश (push) धक्का देते हो। ऐसी अवस्था में दरवाजा कैसे खुलेगा ? धक्का देना तर्क-वितर्क करना है। खींचना प्रेम के द्वारा अपने भीतर बैठाना है। हृदय अन्तः प्रेरणा के महोत्सव-भवन का प्रवेश-द्वार है। शिर उसका निकास है। प्रेम अन्तःप्रेरणा उत्पन्न करता है, शिर व्याख्या करता है। भावनायें सदा विचार से पहले पैदा होती हैं, जैसे शरीर सदा वस्त्रों से पहले होता है। किसी व्यक्ति की भावनाओं को बदल दो, उसके सोचने-विचारने की शैली में एकदम क्रान्ति हो जायगी।

जीवन क्या है ? विघ्न-बाधाओं की शृंखला। किन्तु किनके लिये जो जीवन के ऊपरी सतह पर रहते हैं, उनके लिए जीवन ऐसा ही है। किन्तु जो सच्चा जीवन प्रेम का जीवन व्यतीत करते हैं, उनके लिए ऐसा

नहीं। यह कितना सच है कि गप-शप करने वालों, नाम रूप में विश्वास करनेवालों और लज्जाजनक लोक प्रसिद्ध "प्रतिष्ठा" के निर्लज्ज गुलामों की संगति से बढ़कर विषैली वस्तु संसार में कोई भी नहीं है, किन्तु जहाँ प्रेमरूपी प्रभु डेरा डलता है, वहाँ भला कोई बेहूदा आवारा कैसे पर मार सकता है, उनकी संगति से घृणा करने की जरूरत हमें नहीं पड़ती। कानून क़ानून नहीं रह सकता और प्रकृति ठूँठों से अधिक कुछ नहीं हो सकती, यदि बिना आगुन्तक उन अवसरों को छोड़ कर जब उनकी सेवा की आवश्यकता हो, तुम्हारा समय नष्ट करने की हिम्मत करें।

पंजाब का एक गनीमत नामक सज्जन अपने ग्रन्थ "नैरंगेइश्क़" में एक पाठशाला-शिक्षक, एक गरीब उस्ताद अज़ीज़ की चर्चा करता है, जो अपने एक शहीद नामक विद्यार्थी के प्रेम में दीवाना था। अपने विद्यार्थियों की सुलेख मश्क़ों को सुधारते समय प्रेम दीवाना शिक्षक अपने उस विद्यार्थीगुरु की, जिसने पाठशाला में हाल ही में पढ़ना शुरु किया था, धब्बेदार और टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों को अपना आदर्श बना लेता था। शाबाश ! क्या खूब ! ! दोष तभी दिखाई देते हैं जब प्रेम के अभाव से हमारे लोचन पाण्डुरोग (पीलिया) ग्रस्त रहते हैं जब प्रेमरूपी प्रभु हमारे हृदय में डेरा डालता है, तब मानो एक दिन की प्रभा दूनी हो जाती है, मानो एक दूसरा सूर्य आकाश-मंडल में चमकने लगता है।

सत्यशीलता

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो पवित्रता के नाम पर प्रेमरूपी प्रभु के विरुद्ध खड्ग-हस्त हो उठते हैं। जैसे प्रेम के बिना पवित्रता एक क्षण के लिए भी टिक सकती है। कुछ प्रेम के मारे मरते हैं, कुछ घृणा से मरते हैं। संसार की दृष्टि में निन्दनीय किन्तु सच्चे प्रेम की अपेक्षा दाम्भिक पवित्रता से युक्त घृणा को हृदय में स्थान देना घातक, कहीं अधिक घातक होता है। संसार में अपवित्रता के गुलाम काफ़ी रहते हैं,

किन्तु शायद उनसे बढ़ कर भयंकर होते हैं वे पवित्रता के दास, जो सदाचार की आड़ में अपनी दुर्बलता छिपाते हैं। अपने प्रति सच्चे और निर्मल बनो। अपने अनुभव के अनुसार जीवन बिताओ। अपने अनुभव से अधिक प्रवीण और कोई शिक्षक संसार में नहीं है।

अपने अनुभव की सहायता के बिना कोई मनुष्य कदापि हृदय से शुद्ध नहीं हो सका। बाहरी पवित्रता की छोटी-मोटी बातों को—नहीं, नहीं, स्त्री-जाति से घृणा की आडम्बर को—अनुचित महत्व प्रदान करना, तुम्हें एकमात्र सच्ची पवित्रता—आत्मा साक्षात् से दूर कर देता है। लिंग हीनता के और प्रत्यक्ष नपुंसत्व को ही सब कुछ, सर्वोपरि मान बैठना ग्रहपथ के सच्ची परिधि से भटक कर बाहरी स्पर्श रेखाओं की दिशा में भटकाना है।

यदि सदाचार का दम भरनेवाले और ढिंढोरा पीटनेवाले लोगों का पीछा छोड़ दें, तो जिसे हम शारीरिक और मानसिक स्वच्छता कहते हैं वह उसी प्रकार स्वभावतः और सरलतापूर्वक सीख ली जाय, जैसे बच्चे आरोग्य की दृष्टि से, स्वास्थ्य का साधारण नियम समझकर, नियम-पूर्वक हाथ धोना सीख लेते हैं। कामुकता व भोगासक्ति के विरुद्ध लट्ठ लेकर पीछे पड़ना उस बात की सृष्टि करना है, 'जिससे ईश्वरदत्त मानव-प्रकृति मुक्त है। अपने पौरुष को उच्चतर विषयों में जुटा दो और फिर तुम्हें ऐसी बातें सोचने का ही समय न रह जायगा, जिनमें कामुकता की गंध हो।

पाठशालाओं का काम है कि युवकों में स्वयं सोचने-विचारने की शक्ति पैदा करें, किन्तु वे इसके बदले उनमें बौद्धिक दारिद्र्य पैदा करती हैं। उपदेशात्मक आदेशों से नैतिक दरिद्रता उत्पन्न होती है। भोले-भाले, सीधे लड़कों और लड़कियों पर बलपूर्वक धार्मिक विश्वासों के लादने से आध्यात्मिक दरिद्रता का उदय होता है। आध्यात्मिक दरिद्रता और धार्मिक असहिष्णुता क्रमशः रोग की निष्क्रिय और सक्रिय अवस्थायें हैं।

सभी नदियाँ एक ही सागर में गिरती हैं। समस्त प्रेम सरितायें भी उसी एक प्रेम सागर में मिलती हैं। ईश्वर के वक्षस्थल पर सौंदर्य खिलता है। सौंदर्य का कमल ब्रह्मा की नाभि से उत्पन्न हुआ है। जो सौंदर्य से प्रेम करता है वह उसे क्षीर सागर में शयन करने-वाले भगवान् विष्णु के द्वारा प्राप्त और अनुभव कर सकता है। सचमुच सौंदर्य ही आत्मा का घर है और सौंदर्य ही आत्मा का भोजन है। सौंदर्य भाव से रहित प्राणी केवल राजद्रोह, छल-कपट और लूट-मार जैसे कामों का अधिकारी होता है। किन्तु सौंदर्य है कहाँ? क्या वह नीले नेत्रों की ज्योति में हैं, गुलाबी गालों की चमक है, कोकिल कंठ के मधुर स्वर में है, क्या वह सुन्दर भूभागों में और ललित कलाओं में निवास करता है? हाँ, वह उनमें है, किन्तु उन्हीं में परिमित नहीं है। वास्तव में वह सौंदर्योपासना की रुचि शोचनीय है, जिसे जाड़े भर आनन्द की प्राप्ति के लिए वसन्तागमन की प्रत्याशा करनी पड़ती है। कितनी करुणा-जनक है उस संगीत-प्रेमी की दशा, जिसकी कठिनाई से तुष्ट होनेवाली वारीक रुचि को, एक संतोष-जनक, मधुर स्वर सुनने की खोज में सैकड़ों बार विफल मनोरथ और आहत होना पड़ता है। सचमुच वह व्यक्ति बड़ा दुखी है कि जिसका सुख मनोहर भूप्रदेशों, बागों, अनुकूल साथियों, मधुर शब्दों और अपने से बाहर की वस्तुओं पर निर्भर है।

स्वाधीन पुरुष तो वह है जिसका आन्तरिक प्रकाश उसके आस-पास की सभी वस्तुओं को प्रभा मंडित कर देता है और जिससे केवल दैवी-प्रेम की किरणें मात्र फूटती रहती हैं। चैतन्य-महाप्रभु के सामने आने पर लुटेरों और शराबियों तक में सुप्त दैवी प्रकृति ऊपर की सतह पर खिंच आती थी।

श्वेतकेशधारी सूर्य ने अपनी यात्राओं के मार्ग में क्या प्रकाश के सिवा कभी कुछ और भी देखा है।

योग दर्शन का क्या वह सूत्र गलत है जिसमें जीवन्मुक्त पुरुषों की प्रेम शक्ति से, वन-पशुओं तक में प्रेम-प्रकृति के पुनरुद्धार और प्रादुर्भूत होने की चर्चा है ? क्या सभी धर्मों का स्वर्ग सदा स्वप्न रूप ही नहीं बना रहेगा, यदि वे इस जीते-जागते से शून्य रहते हैं ?

पवित्रता क्या है ?

परिच्छिन्नता और व्यक्तित्व के प्यासे और लोलुप खयालों से अपने ईश्वरत्व ब्रह्मत्व को अकलंकित रखना ही पवित्रता है। पूर्ण पवित्रता का अर्थ है बाहरी प्रभावों के चंगुल में न फँसना। सांसारिक आकर्षण और घृणा से परे रहना, रीझ और खीझ से अविचलित होना, राग और द्वेष से प्रभावित न होना। अभेद दृष्टि के द्वारा आत्मसाक्षात्कार वृत्ति के द्वारा निर्द्वन्द्व स्थिति प्राप्त करना ही पवित्रता है। जो पवित्रात्मा हैं केवल वे ही प्रकृति का रसास्वादन करते हैं, सब नामों और रूपों के दर्पण में अपना ही आन्तरिक "स्वर्ग साम्राज्य" देखते हुए मनोहर दृश्यों और भूभागों का आनन्द लेते हैं जैसे कोई सुन्दरी दर्पण में अपनी ही मुस्कराहट देखकर प्रसन्न होती हो। सच्चा पवित्रात्मा तो वहाँ भी प्रेम करता है जहाँ तुम प्रेम नहीं कर सकते। बल्कि पवित्रात्मा सदा प्रेम, अतः प्रेरक में आगे-आगे बढ़ता रहता है। उसका प्रेम हृदय को कमजोर करनेवाली आसक्ति या मनचली भावुकता नहीं होती। सच्ची पवित्रता मात्र ही सच्चा प्रेम है, और सच्चा प्रेम ही विशुद्ध पवित्रता है। कभी-कभी नैतिक दौर्बल्य भी पवित्रता के नाम से पुकारी जाती है, जैसे आसक्ति (लगन) प्रेम का नाम धारण कर लेती है।

जब तुम किसी वस्तु की चाह में पड़ जाते हो तब तुम उसके आनन्द का उपभोग कदापि नहीं कर सकते ? एक बाहरी प्रकृति-प्रेमी बाग का जैसा रसास्वादन कर सकता है, यद्यपि बाग का मालिक कहलाने वाला नहीं कर सकता, उसके लिए तो उसका फलना-फूलना सौंदर्य निरन्तर चिन्ता और परेशानी का साधन बन जाता है। हमें

इसी प्रेम या पवित्रता (विश्वात्मक चेतन) की आवश्यकता है। और सब वस्तुयें तो हमें अपने आप आ मिलेंगी।

पवित्रता कैसे मिलती है ?

अपनी वर्तमान अवस्था को, वह चाहे जैसी हो, उसी को महिमान्वित करने से अपनी सब वर्तमान स्थिति को सर्वोच्च मानने ही से तुम्हारे हृदय में आत्मज्ञान, ब्रह्म-ज्ञान अनायास उदय होने लगेगा। आत्म-साक्षात्कार के पीछे दौड़ने से जैसे वह कहीं दूर की चीज़ हो, आत्मज्ञान नहीं होता। बच्चा अपने बचपन के खेलों और आकांक्षाओं के प्रति सच्चा रहकर ही बचपन को पारकर प्रौढ़ता को प्राप्त करता है, वयस्क बालकों की बन्दर-जैसी नक़ल करके वह प्रौढ नहीं बन सकता।

सौंदर्य क्या है !

त्याग, अहंकार युक्त जीवन का त्याग निस्संदेह, निस्संदेह व्यक्तित्व के पिण्डीकृत जीवन को खोना ही अमर जीवन की प्राप्ति है। सूर्य की किरणों में विद्यमान सब रंगों को सोख लेनेवाली, पान कर लेनेवाली वा पचा लेनेवाली, स्वार्थ-परायण प्रवृत्ति पदार्थों को काला, कुरूप और अन्धकारमय बना देती है। इसके विपरीत प्रकाश की किरणों के रंगों को उदारता, निर्दोषिता और स्वतंत्रतापूर्वक त्याग देना पदार्थों को जगमग और सफेद बना देता है। सारे आकर्षणों और चुम्बकों का केन्द्र तथा घनीभूत पुंज सूर्य तो निरन्तर चारों ओर ताप और प्रकाश सतत बिखेरता रहता है।

बच्चे मधुर होते हैं क्योंकि उनमें सड़ी हुई संकुचित अहम भावना नहीं होती। जो कोई भी व्यक्ति हममें आत्मत्याग, स्वार्थ-हीन भक्ति का संस्कार पैदा करता है वही हमें बलात् मोहित और आकर्षित करता है। प्रेमी को हर एक व्यक्ति प्यार करता है। ऐ दार्शनिक वाद-विवाद और धार्मिक तर्क वितर्क परे हट जाओ। मैं तुमको जानता हूं। सौंदर्य प्रेम

रूप है और प्रेम सौंदर्य रूप है। और दोनों ही त्याग हैं। इंग्लैंडवासी संन्यासी ई० कारपेन्टर के शब्दों में "जब तक आप अपनी बाबत सोचना क़तई छोड़ नहीं देते, तब तक सुख नहीं मिल सकता, किन्तु अध-कचरे ढंग से काम नहीं चलेगा। यदि परिच्छिन्न भाव का एक ज़र्रा भी शेष रहता है, तो वही सब कुछ मटियामेट कर देता है। मैं यह नहीं कहता कि यह कठिन नहीं है किन्तु मैं जानता हूँ कि दूसरा कोई चारा है नहीं।"

ऐ सजीव मनुष्य, तुझे प्रेम रूप होकर जीना ही श्रेयस्कर है। बुद्ध, ईसा एवं प्राचीन काल के स्वामियों और पथप्रदर्शकों के अपूर्व उदाहरणों के धोखे में मत पड़। "इतिहास, मनुष्य के संकल्प के आगे, एक ही व्यक्ति के संकल्प के सामने सिकुड़ने लगता है। काल और कार्य-कारण से मत डरो। प्रेम की मूर्ति होकर जियो, फिर सारे क़ानून तुम्हारी टहल करने लगेंगे। आन्तरिक शान्ति से एक स्वर हो जाओ और समय तुम्हारा साथ देगा।"

ओ घड़ी की नन्हीं-नहीं सुइयाँ! तुम किन कठोर हाथों से संसार का शासन करती हो। अमर मनुष्य, तू क्षुद्रतम घड़ी की परिधि के संकीर्ण घेरे में शत्रु-भावना से दास बनाकर डाल दिया गया है। क़िस्मत की ख़ूबी! प्रकृति की घनरूपता और एकता के क़ानून में विश्वास न होने के कारण लोग भयभीत हो रहे हैं, कैसी नास्तिकता है! क्या दूसरी देहों में कोई दूसरा निवास करता है। राम कभी घड़ी या घंटाल नहीं रखता, किन्तु उसे कभी देर-सवेर नहीं होती। समय तो स्वयं प्रेम की सहज उद्‌भावनाओं के साथ क़दम मिलाने को बाध्य है। पवन-चक्की को ठीक-ठीक लगा दीजिये, चारों ओर की पवन अपने आप उससे मिल-जुलकर काम करेगी। इसी तरह प्रकृति भी आपसे आप तुम्हारे साथ मिली-जुली रहेगी। प्रेम में केन्द्रित होने पर सभी चमत्कार संभव हो जाते हैं।

हमारी मान्यताओं और आवभगत पर देवता मन ही मन हँसते हैं। निज आत्म-रूप—निकटतम पड़ोसी के प्रति विश्वासघात करके अपने दूरस्थ पड़ोसियों के प्रति सच्चे रहने की चेष्टा में हम कैसी उपहास्य प्रवंचनाओं से ठगे जाते हैं। एक दीन-हीन भिखारी किसी मकानमालकिन से रोटी माँगता है। बेचारी,गृह नारी! उस आवारह की स्वाधीनता से डाह करती है। पर्यटक के चले जाने पर अपने पति से बहाना करती हैं कि उसे अपनी माता का मृत्यु-सूचक पत्र मिला है। यह सोचकर कि शायद माँ हम लोगों के लिए कुछ सम्पत्ति छोड़ गई हो, पति उसे स्वर्ग सिधारनेवाली माता के घर शाम की गाड़ी से जाने की अनुमति दे देता है। महिला टिकट खरीदती है और दूसरी स्टेशन पर ही उतरकर लम्बी होती है। दीर्घकाल तक पिंजड़े की दुख-दायी कैद से छूटे हुए पक्षी की भाँति वह दौड़कर वन में पहुँचती है और जंगल में भरपेट हँसी हँसकर बहुत दिनों के थकानेवाले बोझ से मुक्ति का अनुभव करती है। बस, स्वच्छन्तापूर्वक विचरने लगी, देहाती किसानों से भोजन खरीदा और शाम होने पर सूखी घास के ढेर के नीचे सो रही। दूसरे दिन सवेरे फिर उसने वही सुखकर भ्रमण जारी रखा और लो, यह कौन-सा विकट भयंकर शब्द उसके कानों में पड़ा, यह तो उसी कल वाले पर्यटक के साथ उस का पति घूम रहा है। वह भी खिन्नता के दुख-कर बोझ से उसी प्रकार दबा जा रहा था जैसे कि उसकी पत्नी। वह भी कुछ काल के लिए स्वतंत्रता और छुट्टी के दिन बिताना चाहता था। किन्तु प्रेम-हीन कहे जाने के डर से दोनों में से कोई भी अपने हृदय की आकांक्षा दूसरे पर प्रकट नहीं करता था। दूसरों को खुश करने के लिए इसी प्रकार की तकलीफें हम उठाते रहते हैं। अपने आपके प्रति सच्चे रहो, और ठीक जिस तरह दिन के बाद रात होती है, उसी तरह तुम किसी दूसरे के प्रति कदापि झूठे नहीं हो सकते। आदम और हव्वा के किस्से की भाँति आज भी

लज्जा को छिपाने की प्रवृत्ति अन्य सब पापों की जननी है। दूसरों की उपस्थिति से विकल होना उस एकमात्र आत्मा के प्रति अन्याय है। परमात्मरूप—केवल अपने उच्चतर आत्मा के प्रति सच्चा रहने से मनुष्य दुनिया के लिए प्रकाश रूप हो सकता है। उच्चतम व्यक्तित्ववाद ही उच्चतम उपकारवाद है। वास्तव में उसे परोपकार कहना ही भूल है। दूसरों को हित करने की चाल ही हमारे आकर्षण-केन्द्र को हमसे बाहर खड़ा कर देता है। न्यूटन गुरुत्वाकर्षण के नियम का अनुसंधान करते समय, जिसके कारण वह मानवजाति का एक महान् उपकारी सिद्ध हुआ, क्या दूसरों के बारे में सोच रहा था; कदापि नहीं। हमें सदा ऐसे मिथ्या नामों से बचना चाहिए। डाक्टर जानसन कहता है—"यदि कोई लड़का कहता है कि उसने अमुक खिड़की से देखा, जब देखा हो उसने किसी दूसरी खिड़की से तो झट उसे चाबुक लगाओ।"

प्रेम या नियम ?

राम काल्पनिक सिद्धान्तों पर जोर नहीं देता वरन् यथातथ्य घटनाओं के न्याय का आग्रह करता है। जहाँ कहीं किसी को ऐसा कहते सुनो कि कानून हमें इसकी आज्ञा देता है—तो याद रक्खो, वह आदमी कोई शैतानी करनेवाला है। जो कोई प्रेम में रहता है, वह नियमों से ऊपर नियम होकर वर्तता है। एकमात्र नियमपूर्ण नियम है प्रेम। प्रेम में रहने का अर्थ है अपने प्रति सच्चा रहना, अपना आप ही सच्चा नियम है। मुझे नियमों का आदेश करना उनको मुझसे अलग कर देना है। क्या बच्चे के लिए ऐसे नियम बनने चाहिए कि वह किस प्रकार साँस ले, किस प्रकार बढ़े, खेले या जिये। क्या उसका जीवन ही नियम नहीं है ? एक मुक्त पक्षी की भाँति लड़का गाता, हँसता और अपने आप बातचीत करता देखा जाता है। उत्सुक दर्शक उससे गाने, बातचीत करने, और हँसने का आग्रह करते हैं। बच्चा तुरन्त चुप हो जाता है। क्रीडाशील स्वभाव—जो उसके लिए बिल्कुल स्वाभाविक है वही उसके लिए एकदम

अस्वाभाविक जैसा हो जाता है, ज्यों ही उसे उन स्वभावों की गैरियत का ज्ञान करा दिया जाता है। जो कोई स्वतंत्र, अपनी आत्मा के प्रति सच्चा और दिव्य निर्द्वन्द्वता का जीवन व्यतीत करता है, उसके लिए संसार के सभी नियम, अपने-जैसे सच्चे हो जाते हैं। वह किसी से भी घृणा नहीं करता। वह किसी से झिझकता भी नहीं। वह किसी से डरता भी नहीं।

रोग क्या है? प्रेमाभाव के कारण संकुचित हो जाना, प्रतिच्छायाओं की फटफटाहट से थर्राना, विघ्नबाधाओं के दिवा-स्वप्नों से भयभीत होना। वास्तव में डरने की कोई बात ही नहीं है। चारों ओर, अनन्त भविष्य में, सम्पूर्ण देश में, केवल एक ही परम आत्मा का अस्तित्व है, और वह मेरा अपना आप है। फिर डर किसका हो? रात उतनी ही अच्छी है, जितना दिन। तूफ़ान उतना ही ज़रूरी है जितना सूर्य-प्रकाश। प्रायः सारी रातें बिना पलकें गिराये बीत जाती हैं, तथापि राम दिन में सदा की भाँति प्रफुल्लित रहता है? क्योंकि क्लाँति तो नींद के लिए परेशान होने के कारण होती है, निद्रा का अभाव उतनी क्लांति कभी नहीं करता। उन जागरणों में कैसा मज़ा आता है जब प्रेम की प्रेरणा से हम रात-रात भर सो नहीं पाते! जब शरीर-यंत्र को भोजन की हार्दिक चाह होती है तभी भोजनों में आनन्द आता है, किन्तु कभी-कभी भोजन में अरुचि हो जाने से क्या उपवास में भी वैसा ही आनन्द नहीं आता। अश्रुओं के धारा प्रवाह से आनन्द की बाढ़ सी आती है, जब कि उस प्रचंड अश्रु वर्षा पर प्रेम की सवारी होती है। हँसी की फुहारों में कोई रुकावट नहीं होती, किन्तु अश्रु-आनन्द हँसी के इस स्वच्छंद सुख से रत्ती भर घट-बढ़ नहीं होता। फिर मैं किसका प्रतिरोध करूँ, किससे बचने की चेष्टा करूं, जब सब कुछ मैं ही हूँ? ओह! कैसी पूर्ण निर्द्वन्द्वता है!

बुखार आने पर मैं विकल नहीं होता, मित्रवत् उसका स्वागत

करता हूँ और उस समय ऐसे आध्यात्मिक तत्त्व चमक उठते हैं जो अन्यथा कभी प्रकट नहीं हो सकते थे। हर एक दशा स्वास्थ्य रूप है। जागरण एक प्रकार की तंदुरुस्ती है, निद्रा दूसरी प्रकार की। कोमल शान्ति तो रमणीय होती है, किन्तु उष्ण ताप के वेग का मज़ा भी निराला होता है। सच्चे धर्म का अर्थ पहले भलाई में विश्वास करना है, बाद में ईश्वर में। ऐसा तूफ़ान आज तक आया ही नहीं, जो स्वस्थ और निर्दोष कानों को पवन के संगीत जैसा मधुर न जान पड़ा हो।

मेघों को गड़गड़ाहट के गंभीर नाद से इसी तत्व की घोषणा कर—जब तक बाहरी प्रतिबन्ध और आज्ञा-सूचक आदेश का लेशमात्र 'तू यह कर, तू यह न कर' का चक्र चलेगा तब तक आध्यात्मिक उन्नति अथवा सच्ची पवित्रता के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। आज्ञा-वृत्ति, मध्यम पुरुष, हमारे परिमित व्यक्तित्व को बराबर जाग्रत् रखता है, और जहाँ कहीं परिच्छिन्नता होती है, वहाँ आनन्द नहीं होता, न राग और द्वेष से छुटकारा मिलता है, और न आसक्ति और घृणा से मुक्ति मिलती है। ऐसी स्थिति में प्रलोभन तथा चंचलता से भी छुट्टी नहीं होती। जब तक दूसरे पिंडों से घिरा हुआ यह पिंड एक देश विशेष में स्थित रहता है तब तक वह गुरुत्वाकर्षण को झाँसा क्यों कर दे सकता है, आकर्षण और विकर्षण के नियमों के नेत्रों में धूल कैसे झोंक सकता है, प्रकृति को चकमा कैसे दे सकता है और बाहरी प्रभावों से क्योंकर बच सकता है। विभिन्न इन्द्रियों के कर्मों में स्पष्ट भेद होते हुए भी, मनुष्य अपने अकेले एक शरीर के सम्बन्ध में आत्मा की एकता (चेतना) का अनुभव करता रहता है, वही 'मैं' देखती है, सुनती है, चलती है, अनेक कर्म करती है। इसी तरह जीवनमुक्त सारे संसार के सम्बन्ध में विश्व-आत्मा की एकता की चेतना में निवास करता है। उसे भेद-भावों से सरोकार नहीं रहता जैसे एक ही शरीर में भोजन का परिपाक, बालों का बढ़ना इत्यादि, क्रियायें अपनी फ़िक्र आप ही कर लेती हैं। अपने

अनन्त स्वरूप के अनुभव द्वारा ही, सम्पूर्ण भेद-भावों को जीत कर ही, सर्व के साथ अपनी एकता का अनुभव करने पर ही नक्षत्रों, भूभागों, नदियों आदि सबको अपना ही आप अनुभव करने तथा प्रेम के द्वारा सबको अपनाने ही से हम प्रलोभनों को पूर्ण रूपेण जीत सकते हैं।

प्रचंड मार्तण्ड की जगमगाहट में जुगनूं क्या प्रकाश डाल सकती है? जब सभी मेरे लिए सौन्दर्य रूप हैं, मैं स्वयं सौन्दर्य हूँ, तब मैं किसके पीछे दौड़ूँ? दुनिया की सम्पत्तियों की सम्पूर्ण तालिका में कौन-सी वस्तु ऐसी है, जो उस मनुष्य को आकर्षित करे, जिसने समस्त आकर्षक पदार्थों से पहले ही अभेदत्व प्राप्त किया है?

ऐसा मक्खीचूस चोर कौन-सी दुष्टता नहीं करेगा अथवा नहीं की है, जो अपने को ईश्वर से भिन्न समझता हुआ प्रकाशों के प्रकाश आत्मदेव को मिथ्यावाद के गड्ढे में छिपाना चाहता है—अर्थात् परम आत्मा के साथ मिथ्याचार करता हुआ आत्म-हन्ता बनता है?

No physical action, good or evil,
No mental action, virtuous or ill,
No shame or fame, no praise or blame
Could taint me e'er, no kind of game,
Nothing but the flood of glory!
To whom shall I give thanks,
To whom shall I turn and look up,
When Bliss absolute,
When Light immeasurable is manifest even in me?

कोई शारीरिक कर्म, बुरा या भला,
कोई मानसिक कर्म, नेक या बद,
कोई यश या अपयश, कोई प्रशंसा या निन्दा,
किसी प्रकार का खेल, मुझे मलिन नहीं कर सकता,
गौरव की आई है बाढ़!

किसे दूँ मैं धन्यवाद,
किसके पास जाऊँ, और किसकी आस लगाऊँ,
जब पूर्ण आनन्द,
और अनन्त प्रकाश मुझी में ही प्रकट हो ?

श्रम और प्रेम

दीन-हीन श्रमजीवी की आत्मा के लिए भोजन दीजिये, उससे प्रेम कीजिये, और वह देह के लिए बिना कुछ भोजन माँगे भी तुम्हारा काम करेगा। तुम मजदूर को प्यार करो, मजदूर तुम्हारे काम से प्रेम करेगा। प्रेम-प्रेरित श्रम क्या श्रम कहा जा सकता है ? नहीं, वह तो मनोरंजक खेल जैसा है।

कला क्या है ? जिसे भी स्पर्श करें उसमें सौंदर्य प्रकट कर देना ! पृथ्वी पर या स्वर्ग में वह कौन-सी वस्तु है, जो सौन्दर्य को प्रकट करती, और खोलती है ? भला, प्रेम के अतिरिक्त और कौन-सी ऐसी वस्तु हो सकती है ?

इस प्रकार प्रेम की वृत्ति हमारे श्रम पर चमकती हुई हमारे उद्योगों को सुन्दर बना देती है और औद्योगिक चातुर्य उन्नत करती है। इन दिनों भारतवर्ष में नाम लेने योग्य किसी मौलिक चित्रण, कलापूर्ण कारीगरी, औद्योगिक कौशल की बढ़ती क्यों नहीं दिखाई देती ? क्योंकि श्रमिकों से ज़रा भी प्रेम नहीं किया जाता। बेचारे श्रमजीवी हमारे हृदयों में स्वागत पाने के बदले, अपने ही झोपड़ों से निकाल दिये जाते हैं।

जहाँ श्रम का तिरस्कार किया जाता है, वहाँ परिणाम होता है जड़ता, क्षीणता और मृत्यु। कला भाररूप हो उठती है और जहाँ श्रम से प्रेम किया जाता है, वहाँ जीवन और प्रकाश निवास करने लगते हैं, श्रम कलापूर्ण हो उठता है। पर, प्रेमावतार प्रभु ! यह कैसी दुर्गति हुई ? प्रेम के अर्थ का यहाँ तक अनर्थ होता है कि 'प्रेम' शब्द का उच्चारण

करते ही प्रेमी लोगों के हृदय दिव्य ज्योति के स्थान पर कामुकता और पशुता का उद्रेक होने लगता है। कभी-कभी लोग ईश्वरीय प्रेम, भक्ति और उपासना के बारे में लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं। किन्तु इनका व्यावहारिक रूप होता है केवल कुछ संस्कृत-गीतों का जोर-जोर से गाना अथवा कुछ मंत्रों को जपना। भाव-ग्रहण की तो चर्चा ही क्या, वे ठीक से समझते ही नहीं कि कह क्या रहे हैं। बिना बारूद की खाली गोलियाँ! चैतन्य महाप्रभु के सच्चे दीप्त हृदय की जाली नकल!

मन्दिरों से प्रायः देशी-भाषा के भजन सुनाई पड़ते हैं, जिन्हें गानेवाले अपने योग्यतानुसार उत्तम संगीत के साथ गाते हैं, किन्तु ओ मेरे प्यारे! उसके साथ हृदयों को पवित्र करनेवाले प्रेमाश्रु की बूँद क्यों नहीं बर्षाते!

ओ भाग्यवान् हिन्दुस्थानियो! तुम परमेश्वर को उल्लू नहीं बना सकते, न अपने आप को पापी और दास कहकर उसका प्रेम जीत सकते हो। जैसा तुम सोचोगे ठीक वैसे ही बन जाओगे, फिर बन जाओगे। कर्म का निष्ठुर नियम दुराग्रह के साथ चलता है। जब तुम उस प्रकार की प्रार्थना करोगे तो वह तुम्हें अवश्यमेव पापी और गुलाम बना देगा। यह तो भक्ति नहीं है!

मेरे ऐ दीनहृदय श्रीमान्! ऊँचे-ऊँचे श्वेत मन्दिरों और पाषाण विष्णुओं का निर्माण तुम्हारे हृदय के ज्वर को शान्त नहीं कर सकता। मैं जानता हूँ, तुम दुखी हो। तुम्हारा अभिमान भले ही इसे स्वीकार न करे। देश के भूखे नारायणों और श्रमजीवी विष्णुओं की पूजा करो। भारत के गरीब विद्यार्थियों को उपयोगी कलायें और उद्योग-धन्धे सीखने के लिए अमेरिका भेजो। भारत लौटने पर वे सैकड़ों, वरन् सहस्रों भूखे लोगों को स्वावलम्बी बनाकर बचा सकेंगे।

एक सज्जन ने निजामी रचित "लैली और मजनूँ" पुस्तक पढ़कर लैली का चित्र पुस्तक से फाड़ लिया, और उसे अपनी छाती से चिपका

कर सदा बड़े चाव से चूमने लगा। लोगों ने उससे पूछा—ऐसा क्यों ? वह उत्तर देता है, "मैं तो लैली पर आसक्त हूँ"। मूर्ख ! बेचारे मजनूं की प्यारी को ले लेना क्या तुझे उचित हो सकता है ! मजनूं के प्रज्वलित प्रेम को तुम ले सकते हो, किन्तु जहाँ तक प्रेयसी का सम्बन्ध है, अपनी जीती-जागती प्रेयसी अलग बनाओ।

भारत के भक्तो ! आप सब गोपियों के और चैतन्य के प्यार को लेने के लिए तत्पर रहते हो, किन्तु गोपियों और गौरांग का शुद्ध प्रज्वलित भावावेश आप में से कितनों के पास है ? आप भी उस प्रेमावतार गाय चरानेवाले ग्वाले के प्रेमपात्र बन सकते हैं, यदि उसे केवल प्रस्तर मूर्तियों में बन्द न करके दिव्य प्रेम के साथ चांडाल में, चोर में, पापियों में, परदेशियों में और सब में उसके दर्शन करो।

भक्ति,प्रेम, रोने-धोने और भीख माँगनेवाली ऋणात्मक अवस्था नहीं, वह तो पूर्ण एकता, उज्ज्वल मधुरता, दिव्य निर्द्वन्द्वता की अनिर्वचनीय अवस्था है। वह तो सब में सब कुछ देखना है। वह तो जहाँ दृष्टि जाय वहीं अपने आप, अपनी आत्मा को देखना है, वह तो यह अनुभव करना है कि सब कुछ सौंदर्य है और मैं ही वह हूं।

Oh, Thief ! oh, Slanderer. Robber dear !!
Come, welcome, quick ! Oh, don't you fear.
Myself is thine; thine is mine.
Yes, if you never mind, please take away
These things you think are mine,
Yes, if you think it fit,
Kill this body at one blow, or slay it bit by bit.
Take off the body, and what you may !
Be off with name and fame. Away !
Take off ! Away !
Yet, if you look, just turning round

'Tis I, alone, am safe and sound,
Good day ! Oh, dear ! Good day !

अरे चोर ! अरे निन्दक, अरे डाकू !!
आओ, स्वागत, शीघ्र आओ ! अरे, तुम्हें कोई भय नहीं।
मेरा अपना आप आत्मा तेरा है, तेरा मेरा है।
हाँ, यदि तुम चाहो, चिन्ता नहीं, कृपया ले जाओ
इन वस्तुओं को जिनको तुम मेरी समझते हो।
हाँ, यदि तुम योग्य समझो,
एक ही चोट से इस देह को मार डालो,
या इसे टुकड़े-टुकड़े करके काट डालो।
शरीर को ले जाओ, और जैसा चाहो !
नाम और यश को ले भागो। चल दो !
ले जाओ ! चले जाओ !
तथापि, यदि देखोगे, ज़रा पलट कर,
तो मैं ही अकेला, सुरक्षित और स्वस्थ हूँ !
नमस्कार ! अरे, प्यारे ! नमस्कार !

मुसलमानो ! तुम चाहे मुझे क़त्ल कर डालो। किन्तु मेरे हृदय में तुम्हारा प्रेम दहक रहा है। ईसाइयो, तुम चाहे मुझे समझने में भूल करो, किन्तु मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। अन्त्यजो, मेहतरो ! यदि कोई तुम्हारी गंदी, रोगों से भरी हुई झोपड़ियों में न घुसे तो न घुसे, राम को तुम वहाँ अपने साथ पाओगे ! दिखावटी प्रेम, झूठी भावनायें, और कृत्रिम भावावेश ग्रहण करना ईश्वर का अपमान करना है। जरूरत है सच्ची ज्योति की, फिर वह चाहे निम्नवासनाओं के धुँए से ही कलुषित क्यों न हो।

रूढ़ियाँ, रीतियाँ, परम्परायें, लज्जा, नाम और कीर्ति की पिपासा भूसी और कोयले के उस ढेर का काम करती है, जो दिखावटों के मारे

बोझ से दबे हुए युवक के आन्तरिक हृदय में जलती हुई सच्ची मनोभावना की चिनगारी को अपने धुएँ से दबा देता है। सत्य! तेरा स्वागत है! अकेला तू ही मेरा सम्बन्धी, मेरा सुहृद्, प्रियतम, स्वामी, और स्वयं मेरा आत्मा है।

राजाओ! नियमो और समाजो! तुम्हारा हृदय भाग्यशाली हो! किन्तु तुम सत्य के विरुद्ध राम से कोई समझौता न कर सकोगे। तुम्हारी धमकियों, रीझों, और खीझों से काम न चलेगा। मेरा स्वामी, निर्दय सत्य, हजारों-लाखों महाराजों, निरंकुश सत्ताधारियों, स्वेच्छाचारी शासकों से भी अधिक शक्तिशाली है।

कहा जाता है कि पनामा रेलवे की हर एक गाँठ में एक मनुष्य को जीवन से हाथ धोना पड़ा था। यह चाहे सत्य हो या न हो, किन्तु इसमें रत्ती भर सन्देह नहीं कि निर्दय सत्य का कूच सदैव मानव-खोपड़ियों से कुटी हुई सड़क पर होता है। सुखी हैं वे शिर, जो सत्य के प्रभुतामय चरणों की रौंद से धन्य होते हैं।

जहाँ सत्यता नहीं, वहाँ प्रेम नहीं हो सकता। प्रेमावतार प्रभु निर्दय सत्य का राज्य प्रतिनिधि, अधिकारी है। अथवा यों भी कह सकते हैं कि निर्दय सत्य प्रेमावतार प्रभु का राज्य-प्रतिनिधि है। शायद दोनों एक ही हैं।

But God said,
'I will have a purer gift,
There is smoke in the flame.'
Deep, deep are loving eyes,
Flowed with naphtha fiery sweet;
And the point is paradise
Where their glances meet.
Their reach shall yet be more profound

And a vision without bound ;
The axis of those eyes sun-clear
Be the axis of the sphere.

(Emerson)

किन्तु परमेश्वर ने कहा,
'मैं पवित्रतम भेंट लूँगा,
ज्वाला में तो धुँआ है।'
प्यारी आँखों में भीतर, गहरे में,
ज्वालामय मधुर मटियातेल बहता है ;
और स्वर्ग है वह विन्दु
जहाँ उनकी नजरें मिलती हैं।
उनकी पहुँच और भी अधिक गम्भीर होगी
और दृश्य जिसकी सीमा न होगी ;
उन सूर्य-परिष्कृत नयनों की धुरी
व्योम-मंडल की धुरी होगी। (इमर्सन)

ओ पहाड़ों की धाराओ ! गरजो, खूब गरजो ! ऐ समुद्र, तू भी गरज ! ऐ मृत्यु की खाई ! तू भी पीतवर्ण नक्षत्रों के नीचे प्रलाप कर। और कृष्णवर्ण धरातल पर खूब जम्हाइयाँ ले। किन्तु ओह मेरे महान् हृदयेश्वर ! मैं जानता हूँ कि जंगलों में, पहाड़ों और समुद्रों पर, मृत्यु को काली दरारों पर प्रतिच्छाया की सी शीघ्रता से, तू ही, ऐ मेरे प्रेम प्रभु ! तू ही सवारी करता है, और भूखी हवायें और लपलपाती लहरें तो तेरे ही शिकारी कुत्ते हैं। ऐ निर्दय सत्य ! तू नित्य ही शिकार करता रहता है।

गैलीली (Galilee) में साँझ के समय, प्रभु उन्हें, अपने शिष्यों को श्रम करते हुए, रोते-झींकते हुए, रस्सी को घसीटते और जल्दी-जल्दी खेते हुए देखा, क्योंकि वायु उनके प्रतिकूल थी। किन्तु 'स्वामी' के

लिए न कोई श्रम था और न ऐना-लेना। जो मनुष्य यह जानता है कि वह पानी पर चल सकेगा वह तूफ़ानों के बीच में क्यों न सोवेगा? ओ! हर्ष! मेरा इष्टदेव तो हवाओं और लहरों पर सवार होता है।

जापान में तीन सौ वर्षों के पुराने देवदार, और चीड़ के वृक्ष इतने बौने रक्खे गये हैं जैसे पियाज के पौधे हों। उनकी बाहरी बाढ़ को रोक-थाम कर? नहीं, उनकी भीतरी जड़ों को काट कर; जब वे भूमि में अपनी जड़ें गहरी नहीं जमाने पाते, तब स्वभावतः वे ऊपर भी नहीं बढ़ पाते। बस, इसी तरह अस्वाभाविक शिक्षकों द्वारा नर और नारियों की स्वाभाविक बाढ़ मारी जाती है।

ऐ मूर्ख उपदेशको! धार्मिक दैत्यो! अपने हाथ हटा लो! तुम्हें नवयुवकों को आदेश देने का कोई अधिकार नहीं। किसी व्यक्ति को यदि कोई अधिकार है तो वह है केवल सेवा करने का। प्रकृति, यदि अपनी स्वतंत्र गति से चले तो कदापि भूल न करे। जिस नियम ने, जिस ईश्वर ने लघुतम बिन्दु (amœba) से विकसित करके हमको दिव्य मानव रूप प्रदान किया है उस पर पूरा भरोसा किया जा सकता है।

जिसे मनुष्य ईर्ष्यावश पाशविक मनोविकार कहता है, उसी मनोविकार को वश में रखने में पशु क्यों अधिक संयत, अधिक पवित्र, अधिक समयानुकूल होता है? कारण स्पष्ट है कि पशु 'तुम यह करो' 'यह मत करो' ऐसे आदेशों से तंग नहीं किये जाते। वृद्धि के लिये उपर्युक्त वायुमण्डल सेवा और प्रेम से बनता है, न कि आदेश और लाचारी से।

फूलों को हम कैसे बढ़ा सकते हैं? उन्हें प्यार करके। एक स्त्री ने सुन्दर सुन्दर फूल बिल्कुल प्रतिकूल जल-वायु में उगाये थे। पूछा गया, तुमने यह कैसे किया? मैं उनसे प्रीति करती हूं, और उपाय आपसे आप सूझ जाते थे। प्रेम का मनोरम उत्ताप सर्वोत्तम पोषक होता है। वह उद्योग-धन्धों को भी कलापूर्ण बना देता है और कामों में सुन्दरता ले आता है।

प्रेम को आसक्ति से मत मिलाओ, दोनों अलग-अलग हैं। तुम्हारी स्त्री और बच्चे तुम्हारे प्रेम को घेरने वाली परिधि होने के बदले, ऐसे केन्द्र बनें जहाँ से सारे विश्व के लिए प्रेम फूटने लगे। जीनपाल रिचर कहता है—"मैं अपने परिवार को अपने आपसे अधिक प्यार करता हूँ, अपने देश को अपने परिवार से अधिक और सारे विश्व को स्वदेश से भी अधिक प्यार करता हूँ।"

कुछ दूसरे रूप में लवलैस के भी युद्ध पर जाते समय लूकास्टर से कैसे उत्तम वचन कहे थे—"प्यारी, मैं तुझे अधिक नहीं प्यार कर सका, पर क्या मैंने राष्ट्र को कुछ कम प्यार किया है।"

सच्चा प्रेम, सूर्य की भाँति निजात्मा को विस्तीर्ण करता है। मोह, पाले की भाँति आत्मा को सिकोड़ता और जमा देता है।

मूसा के पहले नियम का अर्थ है—"प्रेम के सिवाय तेरा कोई और ईश्वर न होगा।" प्रेमावतार प्रभु एकाधिकार का इच्छुक है। वह कामुकता और मोह आदि की प्रतिमाओं को अपने राज-सिंहासन पर कैसे बैठने देगा!

एक नारी अपने इकलौते बच्चे की मृत्यु पर रोने-धोने लगी। राम ने पूछा, "क्या तुम एक हबशी बच्चे को गोद लेकर उसे अपने ही बच्चे के समान लाड़-प्यार कर सकती हो? क्या तुम इसके लिए तैयार हो?" उसने कहा—"नहीं" "बस, इसी से तुम्हारा बच्चा जाता रहा।" सबको छोड़कर एक को अपनाने वाले मोह से नहीं, वरन् सबको अपने में समेटने वाले प्रेम से स्वर्ग का विकास होता है।

लोग दूसरों की कृतघ्नता की शिकायत किया करते हैं। जो थोड़ा-सा हित उनसे बन पड़ता है, उस पर वे शाईलोक जैसे प्रसिद्ध सूदखोर यहूदी की भाँति बेहिसाब सूद लेने की चेष्टा करते हैं। शान्ति, शान्ति बात-बात में बड़बड़ानेवालो! शान्ति रखो! ईश्वर के केवल एक हाथ नहीं है। सब हाथ उसके हैं। सब नेत्र परमेश्वर के नेत्र हैं, और सब

चित्त उसके चित्त हैं। किसी व्यक्ति से व्यवहार करते समय क्या तुमने कभी इस बात की परवाह की कि यह तुम्हें उसी हाथ से वस्तु लौटाता है जिस हाथ से उसने उसे लिया था? वह दूसरे हाथ से भी काम ले सकता है, इससे तुम्हें क्या? तुम्हारा ग्राहक हाथ नहीं है, वह तो है हाथों को चलानेवाला।

बस, इसी प्रकार वास्तव में तुम्हारा देन-लेन ईश्वर (नियम, धर्म) से है, उन बाह्य रूपों से नहीं, जो मित्र और शत्रु जान पड़ते हैं। परमेश्वर अपना ऋण चुकाने में कभी नहीं चूकता। छोटे से छोटा निस्स्वार्थ कर्म भी परमेश्वर को ऋणी बना देता है। संभव है, जिस हाथ से उसने ऋण लेने में काम लिया हो, चुकाने में उसका प्रयोग न करे, किन्तु किसी दूसरे हाथ (व्यक्ति) के द्वारा ब्याज-सहित तुम्हारा मूल मिल जायगा।

ऐ चंचल चित्त अविश्वासी! तू क्यों हैरान और परेशान होता है? और कोई नहीं, केवल तेरी ही मधुर आत्मा (ईश्वरीय नियम) इस विश्व-ब्रह्मांड पर एकछत्र राज्य करती है।

मूर्ति पूजा क्या है? अपने मित्रों और शत्रुओं के रूपों को यहाँ तक व्यक्तित्व, अहमत्व और वास्तविकता का भाव प्रदान करना कि निरहंकार (पर्दे-वाला) व्यक्ति, अखण्ड आत्मा या ईश्वरीय नियम का पूर्ण विस्मरण हो जाय।

इस बात का कारण जानते हो? क्यों सघन वनों, सुन्दर भूभागों, नदियों, झीलों और हरे-भरे पहाड़ों के दृश्य हमें उत्साह, उल्लास, आनन्द और आकर्षण प्रदान करते हैं। क्यों? इसीलिए कि उनके द्वारा हमें परिमित व्यक्तित्व के भार से छुटकारा मिल जाता है, उनमें उन कल्पित दृष्टियों का अभाव रहता है, जिनके बोझ से जनाकीर्ण राजपथों में हम दबे से जाते हैं। धन्य हैं ये वृक्ष, धन्य है वह प्यारा जल, जो अपनी निरहंकार कोमलता और मधुरता से हम पर क्षुद्रता का कोई भार नहीं लदने देता।

सुखी है वह, जो इस सारे संसार को एक स्वर्गीय उपवन में परिणत कर देता है, जो नर-नारियों की भीड़-भाड़ में भी उसी निरहंकार जीवन को श्वास-प्रश्वास लेता देखता है, जिसके द्वारा उपवनों के गुलाब और सिंदूर के वृक्ष अनुप्राणित होते रहते हैं।

प्रज्वलित विश्राम

ऐसा मालूम होता है कि नित्य-प्रति लाखों खनिज पदार्थ, पौधे और पशु हमारी निर्द्वन्द्व प्रकृति द्वारा व्यर्थ ही नष्ट कर दिये जाते हैं। कुछ परवाह नहीं, होने दीजिये। राम और प्रकृति घंटे-घंटे में करोड़ों जीवन और खजाने मज़े में लुटा सकता है। वस्तु नष्ट होकर जायगी कहाँ? जहाँ कहीं भी जायगी, रहेगी तो मुझ ही में। प्राचीन भारत की अतुल सम्पत्ति जब तक भारत में थी तब तक मेरी बाईं जेब में थी; अब, जब इंग्लैंड को ढोई जा रही है मेरी दाहिनी जेब में है। मैं हूँ महासागर, ज्वार और भाटा दोनों मुझी में हैं।' द्वेष और प्रतिकार के भाव को पोषण करने से कोई हित न सरेगा। हित होगा अपना कर्त्तव्य प्रेम पूर्वक करने से। प्रेम सब पर विजयी होता है--यह नासमझी की धोखेवाली उक्ति नहीं। स्वामित्व लूट-खसोट के संग्रह द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता। कपूर के एक छोटे से टुकड़े को भी तुम इस प्रकार आज्ञा देकर नहीं रख सकते कि ऐ कपूर, ठहरो, यहीं ठहरो, तुम मेरे अधिकार में हो। किन्तु प्रेम के द्वारा तुम सारे संसार को "अपना, बिलकुल अपना ही" बना सकते हो। केवल प्रेम ही के द्वारा न्यायसंगत स्वामित्व प्राप्त किया जा सकता है। और सब प्रकार का स्वामित्व चोरी, डकैती, दैवी नियमों की हिंसा है, चाहे मनुष्य की स्वार्थपूर्ण प्रवृतियां भले ही उसे न्यायपूर्ण मानने लगें।

उस अत्याचारी तैमूरलंग ने जिसने अपनी ईरान की विजय का उत्सव नब्बे हजार मनुष्यों के सिरों की मीनार से मनाया था, हाफ़िज को उसके प्रसिद्ध भजन के निम्न चरण के कारण अपने सामने उपस्थित होने की आज्ञा निकाली थी :—

"अगर आं तुर्के शीराज़ी, इत्यादि"—"यदि शीराज़ का वह तुर्क मेरा दिल लूट ले तो मैं उस मधुर अत्याचारी के मुख पर के काले तिल पर समरकंद और बोखारा नगर न्यौछावर में दे डालूँगा।"

तैमूर ने गरजकर कहा, "क्यों, क्या तू ही वह आदमी है, जिसने अपनी प्रेयसी के लिए मेरे दो बड़े से बड़े नगर देने का साहस किया है?" निर्भीक कवि ने उत्तर दिया, "जी हाँ! और ऐसी ही उदारताओं से मैंने अपना सब कुछ खो दिया है।"

कवि ने सत्यता प्रकट नहीं की। बात इस रूप में कही जानी चाहिए थी। प्रेम देव को सर्वस्व भेंट करने से मुझे इतनी यथेष्ट सम्पत्ति मिली है कि दोनों लोक बड़े मजे में लुटा सकता हूँ। इसके विरुद्ध ऐ जालिम, तूने संग्रह के लोभ में अपनी टाँग खो दी है, अपनी शीलता से हाथ धो बैठा है, और फिर भी तेरे पास इतनी भी जमीन नहीं, जहाँ तू दफन किया जा सके। "जो आदमी जितना ही अधिक त्याग सकता है वह उतना ही अधिक धनी होता है।"

सारे महात्माओं, कवियों, कला और विज्ञान के आविष्कारकों और निर्माताओं तथा तत्वज्ञान के स्वप्न-द्रष्टाओं की स्फूर्ति और प्रेरणा का मूल स्रोत क्या है? प्रेम ही प्रेम। हाँ, कुछ उदाहरणों में वह औरों की अपेक्षा अधिक व्यक्त हुआ है। कृष्ण, चैतन्य, तुलसीदास, शेक्सपियर, ईसा, रामकृष्ण में उतनी ही दिव्य ज्योति चमकती थी, भीतर जितनी विरहाग्नि सुलगती थी।

कामुकता से शून्य प्रेम आध्यात्मिक प्रकाश है। मेरे प्यारो! कायर-हृदय महात्माओं में इतना साहस अथवा प्रकाश कहाँ कि वे अपनी स्फूर्ति और प्रेरणा का सच्चा भेद—प्रेम अथवा तत्वमसि—जहाँ देखता हूँ वहाँ तूही तू है—का रहस्य लोगों पर प्रकट कर सकें।

लोग खग्रहों की भाँति, बेदम उत्साह से 'सूर्य' की ओर बढ़ते हैं। प्रेम के इस प्रादुर्भाव में वे दिव्य-ज्योति प्राप्त महात्मा से हो जाते हैं।

परन्तु कुछ समय उपरांत केन्द्रपराङ्मुखी शक्ति या आध्यात्मिक जड़ता उनसे गोलाकार चक्कर कटवाने लगती है, उन्हें सूर्य से दूर कर देती है, उन्हें धर्मोन्मत्त बना देती है जिससे वे विभिन्न सम्प्रदायों के घेरे में बँध जाते हैं। कुछ लोग केन्द्रीय सत्य से दूरस्थ मंडलों में घूमते हैं। कुछ दूसरों के मंडल अपेक्षाकृत निकट होते हैं। राम तो इस धार्मिक सूर्य-मंडल का आनन्द लूटता है। किन्तु पतंगे का खेल खेलना और इस प्रकार से प्रकाश के निकटवर्ती होना [उप] कौन पसन्द करेगा कि [नि] निश्चित रूप से [पद्] मेरा और तेरा, सम्पत्ति आदि के अधिकार के सब भावों को छोड़ करके तुच्छ अहं [या जीवन] को प्रकाशों के प्रकाश (उपनिषद्) में भस्म कर दे और तत्त्वमसि, तू वह है हो जाय।

ओ सभ्यता के नौसिखिये ! हम तुम्हारे विज्ञानों और कलाओं का आदर करते हैं, किन्तु दया करके उन्हें बहुत अधिक महत्त्व न दो। प्रेम स्वरूप प्रभु ही वह सूर्य है जिसके इर्दगिर्द संसार के विज्ञानों को ग्रहों और उपग्रहों की तरह चक्कर काटना चाहिए।

भूगर्भ-विद्या मनुष्य से दूर रहनेवाले खनिज पदार्थों और पत्थरों का ऊहापोह करती है। वनस्पति-विद्या का सम्बन्ध खनिजों से कुछ ऊँचे विषयों से है। ज्योतिष आकाश के नक्षत्रों का वर्णन करता है। शरीर-रचना-शास्त्र मनुष्य की हड्डियों, बाहरी ढाँचे का अध्ययन करती है। मनोविज्ञान केवल मन की विभिन्न क्रियाओं का वर्णन करता है। किन्तु प्रेम तो मनुष्य और प्रकृति में विद्यमान सत्य से सत्य तत्त्व का निरूपण है। वह विज्ञान भी है और कला भी। वर्तमान वैज्ञानिक अविष्कार तो उस महान् सूर्य, प्रेमाग्नि ऐक्य भावना की चिनगारियाँ—स्फुल्लिंग मात्र हैं।

बालक फ्रेंकलिन पतंग उड़ा रहा था, और उसका पिता बेंजमिन डोर को पार करनेवाली चुम्बकीय सुई देख रहा था। देखो, इस समय

उसका शरीर कैसा अचल, अचंचल हो रहा है ! जिस पृथिवी पर उसका शरीर टिका हुआ है, उसकी हस्ती उससे किसी तरह अलग नहीं जान पड़ती ? अपने आस-पास की वस्तुओं से वह बिलकुल एक हो गया है ! जैसे एक शिला हो। उसका अन्तः करण प्रकृति की श्वास-प्रश्वास के साथ धड़क रहा है। बस, प्रकृति के रहस्य उसके रहस्य बन गये हैं। आकाश की बिजली पृथिवी पर के विद्युत् स्फुलिंग से अभेद सिद्ध हो रही है। बाह्य प्रकाश आन्तरिक प्रकाश से अपनी एकता प्रकट करता है।

प्रेम या ऐक्य भावना जब दो मनुष्यों के बीच काम करने लगती है, तब भेद-भाव की माया छिन्न-भिन्न हो जाती है। एक की भावनायें दूसरे की भावनायें हो जाती हैं। एक के सीने में जो हलचल होती है वही दूसरे वक्षस्थल में प्रस्फुटित होती है, और दिव्य दृष्टि सिद्ध बात बन जाती है, हमें उसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है।

"निस्सन्देह मै ही इस सब में व्याप्त हूं, जैसे एक ही डोरे में माला के अनेक दाने पिरोये होते हैं।"

Whatever thou lovest, man,
Thou too become that must;
God, if thou lovest God,
Dust, if thou lovest dust.

मनुष्य, जिसे तू प्यार करता है,
वही तू अवश्य बन जायगा।
ईश्वर यदि तू ईश्वर से प्रेम करता है,
ख़ाक, यदि तू ख़ाक को प्यार करता है।

ओ ! अपने ही हृदय को खाना, कैसा स्वादिष्ट, कैसा सुन्दर भोजन है, कैसा धन्य भोजन है ! इतनी स्वादिष्ठ तो और कोई चीज़ नहीं। हाँ, राम के लिए दूध कभी-कभी इसका अच्छा साथी बन जाता है।

९०१ Q HG

The moon is up; they see the moon.
  I drink Thine eyebrow's light.
Big fair they hold, full crowded soon.
  I watch and watch Thee, source of light.
Nay, call no surgeons, doctors, none,
  For me pain is all delight.
Adieu, ye citizens, cities, good bye!
  Oh welcome, dizzy, ethereal heights!
O fashion and custom, virtue and vice,
  O laws, convention, peace and fight,
O friends and foes, relations, ties,
  Possession, passion, wrong and right,
Good bye, O Time and Space, Good bye,
  Good bye, O World, and Day and Night.
My love is flowers, music, light.
  My love is day, my love is night.
Dissolved in me all dark and bright.
  Oh, what a peace and joy!
Oh, leave me alone, my love and I,
  Good bye, good bye, good bye.

चन्द्र निकला है; वे चन्द्रमा देखते हैं !
ऐ प्रेम स्वरूप प्रभु ! मैं तो तुम्हारी भृकुटि की ज्योत्सना पीता हूँ ।
बड़ा मेला उन्होंने लगा रखा है, खचाखच भीड़ हो गई ।
पर ऐ प्रकाशों के मूल मैं तो तुझे ही निरखता और देखता हूँ ।
नहीं; किसी जर्राह, वैद्य, किसी को मत बुलाओ,
मेरे लिए मेरा दर्द ही पूर्णतः हर्ष है ।
ऐ नागरिको, नमस्कार ! नगरो; प्रणाम !
ओ चकरानेवाली, आकाशीय ऊँचाइयो ! स्वागत,

ऐ फ़ैशन और रीति रिवाज, नेकी और बदी,
ऐ क़ानून, नियम, शान्ति और संग्राम,
ऐ मित्रो और शत्रुओ, सम्बन्धियो और बन्धनो,
अधिकार, इन्द्रियानुराग, गलत और सही,
अन्तिम नमस्कार, ऐ काल और देश, नमस्कार।
नमस्कार ऐ दुनिया, और दिन तथा रात।
मेरा प्रेम है फूल, संगीत, और प्रकाश।
मेरा प्रेम है दिवस, मेरा प्रेम है रात।
अँधियारा और उजियाला सब मुझमें लीन।
अरे, कैसी शान्ति, कैसा हर्ष!
अरे, मुझे तो अकेला छोड़ दो, मेरे प्रेम को और मुझको;
नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार!

When blushing bride by Love doth stand
Says "yes" with eyes and gives her hand,
Adieu! father, mother;
Adieu! sister, brother;
The hairs do stand at end,
The throat is choked, On friend.

जब सकुचती हुई दुलहिन प्रियतम के पास खड़ी होकर
नेत्रों से "हाँ" कहती और अपना हाथ सौंपती है।
तब विदा! माता विदा, पिता विदा,
विदा! बहन और भाई, विदा
तब ऐ मित्र, रोमान्च हो जाता है,
और गला रुकने लगता है।

Welcome you are to world so bright,
Welcome to us is God's fair sight;
But remember well,

This is the last we tell;
The hairs do stand at end.
The throat is choked, Oh friend.

स्वागत है तुम्हारा इस चमकीली दुनिया में,
ईश्वर के सुन्दर दर्शन—हमारे स्वागत के लिए हैं !
किन्तु खूब याद रक्खो,
यह हमारा अन्तिम कहना है,
लो, रोमाञ्च हो रहा है,
गला रुका जाता है, ऐ मित्र !

विभिन्न पदार्थ—बड़े-छोटे, भले-बुरे, कुरूप और मनोहर—सबके सब उस सजीवन प्रेमी के लिए विचित्र रेखाचित्र के समान हैं, सभी एक ही प्रेम को सूचित करते हैं, सुन्दर-सुन्दर अक्षर और सब का एक ही अर्थ—मेरा ही अपना आप, उत्तम और उत्कृष्ट चित्र सबके सब प्रियतम प्रभु को दर्शाने वाले सौंदर्य के भिन्न-भिन्न परिधान—सभी उसी प्यारे, आत्मा की भिन्न-भिन्न वेष-भूषायें ! ओह ! चारों ओर सौंदर्य का महासागर, प्रेम का रत्नाकर फैला हुआ है ! प्रेमी के लिए तो प्रेमपात्र की काली काकुलें उतनी ही मन-मोहक हैं जितना गोरा मुखड़ा। सो राम को रात भी उतनी प्यारी है जितना दिन, मृत्यु उतनी ही मधुर है जितना जीवन; ज्वर भी उतना ही अभिनन्दनीय जितना स्वास्थ्य, शत्रु उतने ही प्यारे जितने मित्र।

कितना धन्य है वह जिसकी सारी सम्पत्ति चोरी चली गई ? वह और भी अधिक धन्य है, जिसकी स्त्री भाग गई कब ? जब इन बातों से साक्षात्-प्रेमरूप प्रभु से उसका प्रत्यक्ष संसर्ग हो जाय। मुसलमानों की पौराणिक गाथाओं के अनुसार, इब्राहीम ने एक बार समुद्रयात्रा की इच्छा की। हज़रत खिज्र, या नेपट्यून नाविक की भाँति उनकी सेवा करने के लिए तत्पर हुए। पहले पहल इब्राहीम ने मूर्खता से

उनको बात स्वीकार कर ली। किन्तु फिर कुछ विचारने के बाद उसने इन शब्दों में खिज्र से माफ़ी माँगी, "मेरे अत्यन्त उदार हृदय भाई, मुझे क्षमा कीजिये, मैं तो यह पसन्द करूँगा कि मेरी नौका में कोई मल्लाह न हो, और स्वयं प्रेम रूप प्रभु अपने हाथों उसे पार लगावे। तुम समुद्रों के स्वामी हो, तुम्हारे हाथों में डाँड़ रहने से यात्रा बिलकुल निरापद हो जायगी। ओह, फिर उसमें क्या रस रहेगा! मैं पूर्णतः तुम्हारे सहारे हो जाऊँगा और अपने ईश्वर के भरोसे से वंचित हो जाऊँगा। कृपाकर मेरे और ईश्वर के बीच में न खड़े हो। अपने भाई खिज्र के वक्षस्थल पर आराम करने की अपेक्षा मुझे अपने ईश्वर को गोद में विश्राम करने से अधिक सुख होगा।"

निराश और एकान्त प्रेमी की वाणी सुनिये, "ऐ बिजली, चमको! खूब चमको! ऐ मेघ, गरजो! ऐ तूफान, चिल्लाओ, ऐ पवन, खूब धूम-धाम मचाओ, मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ, मैं तुम्हें बार-बार धन्यवाद दूँगा। बस, केवल एक बार, ऐ भाग्यवान् गर्जन-तर्जन! तू उस कोमल हृदय को डरा-धमकाकर मुझसे एक क्षण के लिए लिपटा तो दे! जीवन की यातनायें भी उस समय कितनी अधिक मधुर होती हैं! जब उनके अँगूरों से हम प्रेम रूपी इष्टदेव के लिए मधुर यन्त्रणा की सुस्वादु मीठी शराब निकाल लेते हैं!

Take my life, and let it be
Consecrated, Lord, to Thee,
Take my heart and let it be
Full saturated, Love, with Thee.
Take my eyes, and let them be
Intoxicated, God, with Thee
Take my hands, and let them be
Engaged in sweating Truth for Thee.

मेरा जीवन ले लो, ले लो और हे प्रभो!

इसे अपनी भेंट होने दो।
मेरा हृदय ले लो, और हे प्रेम-प्रभो !
अपने प्रेम से परिपूर्ण होने दो।
मेरे नयन ले लो, और उन्हें, हे प्रभो !
अपने दर्शन से उन्मत्त, हो जाने दो।
मेरे हाथ ले लो, और उन्हें, हे प्रभो !
सत्य की खोज में पसीना-पसीना होने दो !

प्यारे भाग्यवान् पाठक ! क्या तुम्हें कभी प्रेम में नष्ट होने, नहीं, नहीं, प्रेम में स्वार्थ शून्य होकर प्रेम में ऊँचे उठने का, प्रेम देव को सर्वस्व भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ? हुआ है, तो तुम निम्नांकित भावों का रस ले सकोगे—

"Soft skin of Taif for thy sandals take,
And of our heart-string fitting latchets make,
And tread on lips which yearn to touch those feet,"
"O my blessed Lord, accept me as the most humble slave of feet."

ऐ मेरे प्रभु ! तैफ़ के कोमल चर्म से आप अपने लिए पादुकायें बनाओ, और हमारे हृदय-तंत्रियों से उपयुक्त डोरियाँ और उन होंठों पर चलो जो आपके चरणों को छूना चाहते हैं। ऐ मेरे महाप्रभु, चरणों के अत्यन्त विनीत सेवक मुझ को स्वीकार करो।

है कोई काम ऐसा जिसे प्रेम धन्य और सुन्दर नहीं बना सकता ?

प्रभु जी ! मै चरणों की दासी।

जहाँ प्रेम हो, वहाँ न कोई बड़ा है, न कोई छोटा, न कोई नीचा, न कोई ऊँचा। प्रेम भावना की प्रेरणा से कड़ा काम स्वर्ग-सुख-दायक बन जाता है। स्वार्थपरता ऊँचे से ऊँचे पद को भी अत्यन्त कष्टप्रद और क्लान्तिकर बना देती है। जीवन में तुम्हारी चाहे जैसी स्थिति

हो, प्रेम उसे मधुर बना देता है। हमारी तुच्छ स्वामित्व की भावना से ही सारे क्लेशों, संकटों, पीड़ाओं और चिन्ताओं का जन्म होता है। घोर नरक की व्यथा भी कहाँ रह जाती है, यदि मैं उसे प्यार करता हूँ ?' हमारे सारे क्लेश और अड़चनें मानों उसी प्रेम देव की छेड़खानियाँ हैं कि हम किसी प्रकार जाग उस प्यारे को गले लगावें। ये झटके, धक्के और थपकियाँ कहाँ से आती हैं, उसी मधुर-प्रेम के प्रभु से परमेश्वर, प्यारा हरि, अपना प्रेम उड़ेलता हुआ तुम्हें जगा रहा है।

Then rise, awake.
Dost hear the palm trees sighing ?
It is my heart that sighs
To hear thy lips replying
And gaze into thine eyes,
Then wake, awake!
Sweet Love! see here, I bend to thee, awake, awake!
My loved one! unfold thy heart to me. Wake, awake!

तब उठो, और जागो।
ताड़ के वृक्षों की आहें सुनते हो ?
नहीं, यह तो मेरा दिल है, जो आहें भरता है ?
जो तुम्हारे अधरों के उत्तर सुनने,
और तुम्हारे नेत्रों में ताकने को व्यग्र है!
तो जागो, जागो।
मधुर प्रेम! इधर देखो, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ, जागो, जागो!
मेरे प्रिय! अपना हृदय मेरे आगे खोल दो। जागो, जागो!

Dost see the Himalayan snows
That grow and never tire ?

They cannot cool my burning love
Or quench my soul's desire.
Then wake, awake !
हिमालय की बरफ़ को देखते नहीं ?
जो बढ़ती है और कभी घटती नहीं ?
पर वह भी मेरा प्रज्वलित प्रेम शीतल नहीं कर सकती।
और न मेरी आत्मा की आकांक्षा को बुझा सकती है।
तब जागो, जागो !
Dost hear the Ganges river,
Its sacred waters roll ?
But deeper flows for ever,
The passion of my soul,
Then wake ! awake !
गंगा नदी के कलरव को सुनते नहीं ?
उसका पुण्य-सलिल कितना मनोहर बहता है !
किन्तु जो धारा सदा उससे भी अधिक गंभीर बहती है,
वह है मेरे चित्त की उत्कट उत्कंठा !
तो जागो, जागो !

LUDICROUS FRIGHT.

They say it was a penniless lad
And nothing, nothing to lose he had.
He heard that thieves were at him still,
They must pursue, go where he will,
Thus haunted, worried, he for escape
Ran uphill, down ditch, into the cape -
He hurried and flurried in fear and fright,
Wore out his body, and mind in flight,

Yet nothing, nothing to lose he had,
They say it was a penniless lad!
O worldly man! such is thy plight,
Thy arrant ignorance and fright,
O scared fellow, just know thy-self.
Away with dread of thieves and theft,
Up up awake, see what you are,
There is nothing to lose or fear for,
No harm to thee can e'er accrue
Thy thought alone doth thee pursue.

हास्यास्पद भय

लोग कहते हैं कि एक महा दरिद्र छोकड़ा था,
और कुछ नहीं, कुछ नहीं, गँवाने को उसके पास था।
उसने सुना कि चोर अब भी उसके पीछे लगे हैं,
वे तो पीछा करेंगे ही, वह चाहे कहीं भी जाय।
बचाव के लिए, इस तरह व्याकुल और व्यग्र,
वह पहाड़ पर चढ़ा, खाई में उतरा, गुफा में घुसा।
भय और भीति में उसने जल्दी की और हड़बड़ा उठा,
भागते-भागते उसने अपनी देह और चित्त को थका दिया इतना,
तथापि कुछ नहीं, कुछ नहीं गँवाने को था उसके पास,,
वे कहते हैं कि वह तो बेछदाम का छोकड़ा था!
ऐ संसारी मनुष्य! इसी प्रकार की है तेरी दुर्दशा,
कैसा अति दुष्ट निकृष्ट अज्ञान और भय मय,
ऐ सहमे हुए मनुष्य, जरा अपने को तो पहचान।
चोरों और चोरी का डर दूर फेंक,
उठ, जाग, उठ देख तू है क्या?

न कुछ गँवाने को है और न किसी से कुछ डरने को,
तुझे कभी कोई हानि नहीं पहुँच सकती,
केवल तेरा ख़्याल तेरे पीछे पड़ा है।

व्यावहारिक विद्या

जो एक फरलांग सहानुभूति-हीन हो विचरता है, वह मानों कफ़न पहने अपनी ही अन्त्येष्टि-क्रिया के लिए जा रहा है।

विद्या और विद्वत्ता एक नहीं हैं। सदा उनकी पटरी नहीं बैठती। विद्वता अतीत की ओर देखती है। विद्या आगे भविष्य की ओर को ताकती है।

विद्या की परिभाषा है अपना अगला कर्तव्य जानना और उसी कर्तव्य का पालन करना पुण्य कहलाता है।

पुण्य के बिना विद्या शरीर की थकावट मात्र है। जिस तरह इच्छा कार्य में परिणत होती है, विज्ञान कला में, ज्ञान शक्ति में, उसी तरह विद्या पुण्य का रूप धारण करती है। और जहाँ विचार कार्य में परिणत नहीं होता वहाँ मानसिक मन्दाग्नि अथवा नैतिक अजीर्ण हो जाता है। हाथ-पैरों से रहित केवल विचारों के मनुष्य विचारशील कनखजूरों से बढ़कर नहीं होते!

एक अमेरिकन हास्य-लेखक कहता है:—

I' ve thought and thought on men and things,
As my uncle used to say,
'If the folks don't work as they pray,
Why, there ain't no use to pray,
If you want some-thing and just dead set,
A pleading for it with both eyes wet,
And tears won't bring it, why, you try sweat,
As my uncle used to say

मैंने मनुष्यों और वस्तुओं पर खूब ही विचार किया है,
जैसा कि मेरे चचा कहा करते थे,
" यदि लोग काम नहीं करते जैसी कि वे प्रार्थना करते हैं,
तो फिर प्रार्थना से लाभ ही क्या ।"
यदि तुम कोई वस्तु चाहते हो और बड़ी उत्सुकता से
आग्रह करते हो दोनों आँखें तर करके उसके लिए,
यदि नेत्रों के आँसुओं से वह प्राप्त नहीं होती, तो फिर
बहाओ पसीना उसके लिए ।
जैसा कि मेरे चचा कहा करते थे ।

बाह्य अवस्थाओं के प्रति ठीक और सुरक्षित ढंग से प्रतिघात करने की शक्ति बुद्धि की स्वस्थता का आवश्यक लक्षण है । आवश्यकतानुसार कार्य करने की अक्षमता पागलपन का लक्षण है । "बदलो या मर मिटो" प्रकृति का कठोर आदेश है । बढ़ते हुए समय के साथ-साथ चलो, तभी तुम जीवन-संघर्ष में सफल हो सकते हो । (भारत, सावधान होकर सुनो !)

सम्पूर्ण व्यावहारिक विद्या का तत्व भगवान् कृष्ण की इस सरल और संरक्षक शिक्षा में अति संक्षेप से भरा हुआ है ।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥४७॥ (गीता २)

"तेरा प्रयोजन केवल कर्म से है, उससे होनेवाले लाभ या फल से नहीं । न तू कर्म के फल में फँस, और न निष्क्रियता का दास बन ।"

"And live in action ! Labour ! make thine acts
Thy piety, casting all self aside,
Contenming gain and merit; equable
In good or evil; equability
In yoga, is piety;"

कर्म में, श्रम में जीवन व्यतीत कर! अपने कर्मों को ही अपनी पवित्रता मान, सम्पूर्ण परिच्छिन्न आत्मा (स्वार्थ) को अलग रख दे, लाभ और कीर्ति को तुच्छ समझ; बुराई और भलाई में समभाव प्राप्त कर, समभाव ही योग है, ईश्वरनिष्ठा है।

कर्मक्षेत्र में डट जाओ; वही तेरा कर्तव्य है। सच्चा वीर अपने कर्त्तव्य कर्म को जितना प्यार करता है, उतने प्रेम से कभी किसी प्रेमी ने अपनी प्रियतमा से प्रेमयाचना न की होगी। रणक्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त होकर तुम सत्य अथवा स्वर्ग की महिमा बढ़ाते हो [दूसरे शब्दों में योग्यतम को जीने का अवसर प्रदान कर विकाश और विश्व-उन्नति को अग्रसर करते हो।] यदि विजय मिली तो भी तुम अपने द्वारा सत्य (सत्) वास्तविक शक्ति को प्रस्फुटित करते हो। वास्तव में तुम्हीं परम सत्य हो जो विजयी होता है, और तुम यह या वह शरीर नहीं जो संघर्ष में मर-खप जाता है। तुम सदा विजयी रहते हो। अतः सत्य की आत्मा होकर प्राण के तेज होकर चमको।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

(गीता अध्याय २)

"Either — being killed —
Thou wilt win heaven's safety, or—alive
And victor—thou wilt reign earthly king.
Therefore, arise thou, Son of Truth ! brace
Thine arm for conflict, never thy heart to meet—
As things alike to these—pleasure or pain,
Profit or ruin, victory or defeat.

So minded, gird thee to the fight, for so
Thou shalt not sin."

यदि मारे जाओगे तो स्वर्ग प्राप्त करोगे, यदि विजयी होकर जियोगे तो पृथ्वी का राज्य भोगोगे। अतएव ऐ सत्य के पुत्र! उठ, युद्ध के लिए अपने हथियार सम्हाल, हृदय की दुर्बलता छोड़कर सुख-दुःख, लाभ-हानि और जय और पराजय को एक समान समझ; ऐसा समझ कर युद्ध के लिए कटिबद्ध हो; क्योंकि इस तरह तू पाप से मुक्त रहेगा।

सफलता की सच्ची कसौटी है आध्यात्मिक उन्नति; बाहरी लाभ या हानि नहीं, अतः पराजय वैसी ही महिमामय है, जैसी विजय!

"शाह स्वारे खुश ब मैदान गोया खिज़ान"।

ऐ भाग्यशाली योद्धा, तुम संयोग से क्रीडाभूमि में आ पड़े हो, बस, संसार रूपी गेंद पर चोट मारे चलो।

किसी मनुष्य का चरित्र-बल ठीक उसी परिमाण में होता है, जितनी कठिनाइयों को वह पार कर चुकता है।

"Then welcome each rebuff
That turns Earth's smoothness rough.
Each sting that bids not sit nor stand, but go!
Be our joys three parts pain.
Strive and hold cheap the strain;
Learn, nor account the pang; dare,
Never grudge the throe.
For thence a paradox
Which comforts, while it mocks,
Shall life succeed in that it seems to fail"

"तब ऐसे हरएक पराभव का स्वागत करो जो पृथिवी की स्निग्धता को खुरखुरा कर देता है। हर डंक हमें आदेश देता है बैठो न, खड़े न हो, आगे बढ़ो!

उससें हमें पीड़ा से तिगुना सुख मिलता है। प्रयत्न करो और उद्यम को सुख समझो; सीखो, पीड़ाओं को न गिनो, साहस करो, यातना से कभी मुख न मोड़ो। लो, यह कैसा विरोधाभास है; और यह तभी सुखकारी होता है जब वह उपहास करता है। और जो असफलता प्रतीत होती है, वही वास्तव में जीवन की सफलता है।

योजनाहीन योजना

परन्तु यदि समस्त लोकाचार और बातों के बनावटी ढंग को तिलांजलि देकर हम सीधे हृदय के अन्तर्तम अनुभव के प्रत्यक्ष संसर्ग में आवें तो हम देखेंगे कि समस्त बुद्धिमानी के परामर्श, आचरण के नियम, प्रामाणिक कर्त्तव्य, निश्चयात्मक आदेश "तू यह कर और यह न कर," ऐसी सारी बातें उस मनुष्य में जीवन-संचार के लिए एकदम व्यर्थ सिद्ध होती हैं, जो ज्ञानतः अथवा अज्ञानतः अपने ब्रह्मत्वभाव में दृढ़तापूर्वक स्थित नहीं हुआ है, अधिक से अधिक ये उपाय उस ऊपरी विद्युत् संचार के समान हैं, जो किसी प्राणहीन शव के इस अंग अथवा उस अंग को हिला देते हैं, दिखावटी जीवन-क्रिया दिखाने के अतिरिक्त ऐसे विद्युत् संचारों का और कोई मूल्य नहीं।

"That which is forced is never forcible"

जो बलपूर्वक कराया जाता है वह कभी सबल नहीं होता।

जब तक प्रेम स्वयं घर न बनावे, तब तक बनानेवालों का परिश्रम व्यर्थ जाता है। यह सच है कि अलौकिक बुद्धि के चमत्कार सदा परिश्रम-जनित ही सिद्ध हुए हैं, परन्तु जो अन्य लोगों की दृष्टि में कष्टकर परिश्रम दिखाई देता है, वह स्वयं मेधावी को सर्वाधिक आनन्ददायिनी क्रीड़ा के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता।

उस निर्जीव, नीरस कार्य को जिसे व्यक्तिगत अहंकार श्रमपूर्वक करता है, छोड़ देना ही श्रेयस्कर है। यदि कार्य आत्मा के सहज प्रसरण

की भाँति तुम्हारे द्वारा अपने आप नहीं बहने लगता, तो उसके लिए माथापच्ची करना उसकी पूर्ति का एक तुच्छ बहाना है। इस प्रकार के फीके, रसहीन काम को जो यश और माया लोलुप अहं (क्षुद्र परिच्छिन्नात्मा) द्वारा श्रमपूर्वक किये जाते हैं, उन्हें आचार्य शंकर ने बन्धन का सहोदर माना है।

एक लड़का सोल्लास बाजार में सीटी बजाता हुआ जा रहा था। किसी पुलिसमैन ने उसे टोका। लड़का उत्तर देता है, "साहब, क्या मैं सीटी बजाता हूँ? नहीं, वह तो आप ही आप बजती है।"

बुलबुल या कोयल ज्यों ही किसी ऊँचे वृक्ष की चोटी पर बैठती है, त्योंही वह अपने आप पूरे आलाप से मधुर गीत गाने लगती है।

इस क्षुद्र अहं को अनन्त सागर में डुबो दो और प्रभुप्रसाद से तुम जीवन, प्रकाश और प्रेम में, सत्-चित्-आनन्द से मुक्ता के अनुभव में जाग उठोगे। बस, तुरन्त ही परम कल्याणमय प्रवाह तुम्हारे भीतर से सुखदायक और वीरतापूर्ण कार्यों के वेष में फूट निकलेगा। यही विद्या है और यही पुण्य। यही है ईश्वर-प्रेरित जीवन, और यही तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार!

"From himself he flies,
Stands in the sun, and with no partial gaze.
Views all creation; and he *loves* it *all*
And blesses it, and calls it very good"

(Coleridge)

अर्थः—अपने आपके पास से भाग कर
वह खड़ा होता है धूप में और बिना किसी पक्षपातपूर्ण दृष्टि के
देखता है सम्पूर्ण सृष्टि को; वह उस सबको प्यार करता है,
आशीर्वाद देकर कहता है—अति उत्तम!

(कोलरिज)

शोपेनहार का वचन है, "अपने आप में आनन्द प्राप्त करना कठिन है, पर उसे कहीं अन्यत्र प्राप्त करना तो असम्भव है।"

चातुर्यपूर्ण क्षुद्र अहं के रहते हुए भी सभी बड़े कार्य अकर्तृत्व भाव में ही सम्पन्न होते हैं, उनमें क्षुद्र अहं का हाथ नहीं होता। सूर्य तो केवल निष्काम साक्षी के रूप में अपने स्वाभाविक प्रकाश से चमकना आरम्भ करता है। और लो! नदियाँ अपने हिमाच्छादित निवास से निकल पड़ती हैं। हवा के झोंके प्रसन्नता से नाचने लगते हैं, सारी प्रकृति गतिशील हो जाती है। पशु जाग उठते हैं, पौधे बढ़ने लगते हैं, गुलाब और कमल खिल उठते हैं। यही नहीं, नर-नारी और बच्चों के नेत्ररूपी चमकदार पुष्प भी सूर्य के प्रचण्ड प्रताप की उपस्थिति मात्र से खिल जाते हैं।

ऐ आनन्दमय आत्मन्! तुम्हें केवल सबकी आत्मा, प्रकाश के स्रोत, हर्ष के निर्झर की भाँति चमकना भर है। और फिर तेज, जीवन, और गति अपने आप भीतर से फूटने लगेगी। फूल खिलता है और सुगंधि स्वतः फैलने लगती है।

तैरने की कला को न जाननेवाला यदि कोई मनुष्य संयोग से झील में गिर पड़े, तो पानी स्वतः उसे ऊपर उछाल देता है, परन्तु घबराहट के मारे बेतहाशा हाथ-पैर मारने से वह फिर डूब जाता है। इसी तरह अशान्त और चिन्ताओं से प्रयत्नशील क्षुद्र अहं-भाव ही मनुष्य को डुबानेवाली भँवर है। देखिये, जलाल-ए-रूमी कहता है—

"Heavenly manna was showered daily to thee
Israelites in the forest, but
Some graceless scoffers out of Moses' host
Dared to demand the onions,
And manna was lost"

इसराइलियों के लिए जंगल में नित्य,
स्वर्गीय भोजन की वर्षा होती थी।

किन्तु मूसा के समूह में से कुछ दुश्शील मसखरों ने पियाज माँगने का दुस्साहस किया, और लो, भोजन भी गायब।"

सिर कैसे दर्द करने लगता है, कमर कैसे झुक जाती है, सीना कैसे रुँध जाता है? पैरों के बदले सिर के बल चलने से। अपने पैरों को ज़मीन पर ही रहने दो और सिर स्वर्गीय हर्ष से परिपूर्ण आकाश में। दैवी प्रबन्ध को मत उलटो। पृथ्वी को अपने सिर पर मत लादो और न ऐसे जीवन को समझदारी का जीवन समझो। ऊपरी दिखावटों को दिव्य वास्तविक आत्मा से अधिक गम्भीरता प्रदान करना भूल है।

सुना है कि एक मनुष्य धरती के फूलों की खोज में जंगल में विचरता हुआ शाहबलूद के वृक्षों को पैरों तले कुचलने लगा था। प्यारे, तुच्छ लाभों और हानियों पर तुम्हारा ध्यान क्यों इतना जम जाय कि अनन्त आनन्द (आत्मा) से ध्यान हट जाय? क्या उत्तरदायित्वों से लदा हुआ, कर्त्तव्यों में फँसा हुआ, प्रतिष्ठा में पगा हुआ (मिथ्या) अहं वास्तव में कोई काम करता है? तब तो घोड़े के पुट्ठे पर बैठी हुई एक मक्खी भी दावा कर सकती है कि मैं ही घोड़ा दौड़ाती और गाड़ी हाँकती हूँ।

तुच्छ मैं (अहंकार) को सत्य के उस परम आह्लादकारी प्रस्फोट के मार्ग में मत खड़ा करो। भरोसा करो, विश्वास रक्खो उसी शक्ति पर, सच्चे अहं पर जिसकी उपस्थिति के कारण यह बिचारा छोटा सा जीवाणु अनजाने ही विकसित होता हुआ तुम्हारे दैवी, मानवी रूप तक पहुँचा, वह परम आत्मा, वह दैवी-विधान तो सदा-सर्वदा ज्यों का त्यों है। परमेश्वर न तो कभी सोता है और न कभी मरता है, और न कभी हमारे पतन की कोई संभावना है।

Like birds that slumber on the sea
  Unconscious where the current runs,

We rest on God's infinity,
On bliss that circles stars and suns,
Says the Brahmacharin of America (Thoreau)
"Whate'er we leave to God, God does
And blesses us:
The work we choose sh'd be our own
God leaves alone."

चिड़ियों के समान जो समुद्र पर सोते हैं,
जिन्हें खबर नहीं कि धारा कहाँ से वहती है,
वह तो उस अनन्त परमेश्वर और उसके आनन्द पर
विश्राम करते हैं जो नक्षत्रों और सूर्यों को घेरे हुए हैं।
अमेरिका का ब्रह्मचारी थोरो कहता है—
"जो कुछ हम ईश्वर पर छोड़ते हैं, उसे ईश्वर स्वयं पूरा करता
और हमें आशीर्वाद देता है;
जो काम हम अपने लिए चुनते हैं कि हमारा निजी होना चाहिए,
उसे ईश्वर अलग रख देता है।"

कष्ट और पीड़ा क्या है? अपने आपको कैदी मान करना, अवस्थाओं तथा परिस्थितियों का गुलाम मानना। अपने आपको पृथक् समझने वाले इन नास्तिकतापूर्ण भ्रमों को उतार फेंको। यदि बाह्य प्रकृति की शासक आत्मा तुम्हारी निजी अभ्यन्तर आत्मा से भिन्न हो तो फिर तुम्हारे लिए हाथ मलने, सिर पटकने और अन्त में नष्ट होने के सिवाय और कोई उपाय शेष नहीं बचता। परन्तु तथ्य यह है कि एक ओर तुम्हीं परिस्थितियों से घिरे हुए मालूम होते हो और दूसरी ओर तुम्हीं उन परिस्थितिओं और अवस्थाओं में प्रकट होते हो। दर्पण मुझ में (मेरे हाथ में) है और मैं दर्पण में हूँ।

" I heard a knock—a hard blow
On my door and cried I "Who is it? Ho!"

I wondering waited entranced, and lo !
How soft and sweet Love whispered low,
"'Tis thou that knockest, do you not know ?"

"मैंने अपने द्वार पर एक खटखटाहट सुनी, एक कड़ी
ठोकर और पुकारा—"कौन है ? बाहर !"
मै चकित होकर दरवाजे पर राह देखता रहा, और लो !
कोमल और मधुर उसे प्रेम स्वरूप ने कैसे धीरे से कहा,
"अरे तुम्हीं तो हो जो खटखटाहट करते हो, और तुम नहीं जानते ?"

मुसलमानी धर्मग्रन्थों की सच्ची टीका के अनुसार मनुष्य में परमात्मा (ईश्वर) के अस्तित्व से इनकार करने के कारण आर्कऎंजल भी नरक में डाल दिया गया था (देखो अलस्तू कालूबला इत्यादि), और घोर पापी लोगों ने भी मनुष्य (अहमद) में ईश्वर (अहद), अनुभव करने से स्वर्ग प्राप्त कर लिया था।

"मेरी आत्मा ही अन्य सबकी आत्मा है, ऐसा जीता-जागता व्यावहारिक ज्ञान ही हमारा सच्चा त्राता इसलाम (विश्वास या श्रद्धा) है।"

इसे केवल मन का विश्वास मात्र कहना इसके साथ अन्याय करना है। यह तो "अन्तिम विज्ञान" (वेदान्त या ज्ञान) है। और यही है कलाओं की कला।

डाक्टर डी० एस० जार्डन ने कहा था—सत्य की अन्तिम कसौटी यह है कि क्या हम उसे काम में ला सकते हैं ? क्या हम उसे अपना जीवन सौंप सकते हैं ?

और तुम बेखटके अपना जीवन और अपना सर्वस्व इस सारे दृश्य के उस आधारभूत तथ्य को सौंप सकते हो,—"मै और मेरा पिता एक हैं।" "वह तू है" "तत्त्वमसि !"

गुरुत्वाकर्षण का नियम चाहे तुम्हारे विश्वास को धोखा दे जाय, किन्तु आत्मिक एकता का नियम कभी धोखा नहीं देता। इस एकता

का अनुभव करो और अनुभव करते ही तुम देखोगे कि सम्पूर्ण सृष्टि तुम्हारे शरीर की भाँति वर्त्ताव करती है। ऐ मायामुग्ध अमर पुरुष! सोना और चाँदी तेरे जीवन का बीमा नहीं कर सकते। तू तो है वह, जो प्राणों को प्राण, सोने और चाँदी को दमक, और सूर्य तथा नक्षत्रों को प्रकाश उधार देता है।

लोग द्रुत गति से उन्नति क्यों नहीं करते, क्योंकि बाहरी सम्मतियों, विचार-धाराओं का बड़ा भारी बोझ महान् हिमालय की तरह उनकी पीठ पर, नहीं, छाती पर लदा रहता है जिससे वे एक पग भी आगे नहीं बढ़ने पाते। अस्वास्थ्यकर अंध विश्वासों से, परिच्छिन्नताओं से अपने आपको मुक्त करो। तुम्हारे चित्त में ऐसी शिरका (शराब) होना चाहिए कि उसमें पड़ते ही दुनिया गल जाय।

विश्व के गलते रहने पर भी ज्ञान (आत्मज्ञान) की सार्वभौमिक धारा में भी उसकी ज्योति सदा पारदर्शक रहती है। ठीक तरह से विचार करो, फिर चाहे आसमान गिरे या पृथ्वी फटे, तुम्हारी उन्नति का संगीतमय पथ बराबर खुला ही रहेगा। न कोई शत्रु कभी तुम्हें देखेगा और न तुम उसको। तुम उस स्थिति में शत्रु का ख्याल तक नहीं कर सकते।

संगीत में विभिन्न स्वर एक नियमित क्रम से (कारण और कार्य की तरह) एक दूसरे के आगे-पीछे आते-जाते हैं, किन्तु केवल स्वरों की परीक्षा और तुलना से स्वर-साम्यता समझ में नहीं आती। वह स्वरसाम्यता तो अनुभव सिद्ध होती है, वह स्वरों और हमारी उन गंभीरतम भावनाओं के पारस्परिक सम्बन्ध पर अवलम्बित है, जो उस गान की प्रेरक होती हैं, उस गान को धारण करती हैं, और उनका मूल और अन्तिम परिणाम होती हैं, वही उस स्वरसाम्यता की असली जान हैं।

इसी प्रकार प्रकृति के ऊपरी नियमों और बाह्य हेतुओं के ऊहापोह

से प्रकृति की व्याख्या नहीं होती, किन्तु उसको 'मनुष्य-शरीर जैसा बनाये जाने पर" ही वह समझ में आती है। दूसरे शब्दों में जब तक उसके साथ अपने शरीर-जैसा तदात्म भाव न होगा, तब तक वह पहुँचानी नहीं जा सकती।

जब तक तुम सबको अपना आप मान न करोगे, तब तक तुम सबको जान नहीं सकते। वास्तविक तथ्य में गोता लगाना, नामों और रूपों के नीचे की थाह लेना, वनों और उपवनों में, पहाड़ों और नदियों में, दिन और रात में, मेघों और नक्षत्रों में आज़ादी से विचरना, पुरुषों और नारियों में, पशुओं और फिरिश्तों में, हरेक की और सबकी आत्मा में निर्द्वन्द्व हो कर विचरना, यही जीवन है, यही आत्म-ज्ञान है, सच्ची बुद्धिमानी है।

"The whole world is bound to co-work with one who feels himself one with the whole world."

"जो समग्र संसार के साथ अपने को अभिन्न अनुभव करता है, समग्र संसार उसके साथ काम करने के लिए बाध्य है।"

कारण जगत् में ज्ञान (सत्य का सजीव जीता-जागता ज्ञान) की उपलब्धि हो जाने पर वही ज्ञान आत्यन्तिक प्रेम की धार में परिणत हो जाता है। दूसरे शब्दों में सबके साथ और सारे जगत् के साथ अभिन्नता की भावना उत्पन्न हो जाती है, जो जाज्वल्यमान सूर्य की भाँति चिरन्तन आनन्द के रूप में फूट निकलती है, जहाँ यद्यपि फल की चेष्टा नहीं होती, पुरस्कार की इच्छा नहीं होती, और कोई कामना नहीं रहती (क्योंकि मानसिक लोक में वही ज्ञान त्याग के रूप में प्रकट होता है), तथापि स्थूल जगत् में अद्भुत तेज और शक्तिशाली कार्य की भाँति प्रादुर्भूत होता है।

इस लिए ज्ञान का अनुभव कीजिये और प्रेम से कर्म में निरत होकर त्याग प्राप्त कीजिये।

I have no scruple of change, nor fear of death,
Nor was I ever born,
Nor had I parents.
I am Existence Absolute, Knowledge Absolute
Bliss Absolute,
I am That, I am That.
I cause no misery, nor am I miserable,
I have no enemy, nor am I enemy.
I am Existence Absolute, Knowledge Absolute,
Bliss Absolute,
I am That, I am That.
I am without form, without limit,
Beyond space, beyond time,
I am in everything.
I am the bliss of the Universe,
Everywhere am I,
I am Existence Absolute, Knowledge Absolute,
Bliss Absolute,
I am That I am That.
I am without body or changes of the body,
I am neither sense; nor object of the senses,
I am Existence Absolute, Knowledege Absolute
Bliss Absolute.
I am That, I am That.
I am neither sin, nor virtue,
Nor temple nor worship,
Nor pilgrimage, nor books.
I am Existence Absolute, Knowledge
Absolute, Bliss Absolute.

(१) मुझे न परिवर्तन से परहेज है और न मौत का डर,
न कभी मैं पैदा हुआ,
न कोई मेरे माता-पिता।
मैं हूँ वस्तुतः सच्चिदानन्द स्वरूप
वही मैं हूँ, वही हूँ मैं।

(२) न मैं दुःख का कारण हूँ, और न मैं दुःखी हूँ,
न मेरा कोई शत्रु और न मैं किसी का शत्रु।
मैं हूँ परम सच्चिदानन्द स्वरूप,
मैं वही हूँ, वही हूँ मैं।

(३) मैं रूप हीन और सीमा हीन हूँ,
देश से परे और काल से परे,
मैं हरेक वस्तु में हूँ।
मैं विश्व का कल्याण हूँ,
मैं हूँ सर्वत्र
मैं हूँ परम सच्चिदानन्द स्वरूप,
मैं ही वह हूँ, मैं ही वह हूँ।

(४) मैं शरीर नहीं, शरीर के परिवर्तन नहीं,
मैं न तो इन्द्रिय हूँ और न इन्द्रियों का विषय।
मैं हूँ परम सच्चिदानन्द स्वरूप,
मैं ही वह हूँ, मैं ही वह हूँ।

(५) मैं न पाप, न पुण्य,
न मन्दिर, न पूजा,
न तीर्थ-यात्रा और न ग्रन्थ।
मैं हूँ परम सच्चिदानन्द स्वरूप,
मैं ही वह हूँ, मैं ही वह हूँ।

I am That, I am That.

Within the temple of my heart
The light of love its glory sheds,
Despite the seeming prickly thorns
The flower of love free fragrance spreads.
Perennial springs of bubbling joy
With radiant sparkling splendour flow.
Intoxicating melodies
On wings of heavenly zephyrs blow.
Yea ! Peace and bliss and harmony—
Bliss, oh, how divine !
A flood of rolling symphony
Supreme is mine.

Free birds of golden plumage sing
Blithe songs of joy and praise
Sweet children of the blushing spring
Deep notes of welcome raise.
The roseate hues of nascent morn
The meadows, lakes, and hills adorn
The nimbus of perpetual grace.
Cool showers of nectar softly rains
The rainbow arch of charming colours
With smiles the vast horizon paints.
The tiny pearls of dewdrops bright
Lo ! in their hearts the sun contain.
O joy ! the Sun of love and light.
The never-setting Sun of life
Am I, am I.

That darling dear
Came near and near—
Smiling, glancing,
Singing and dancing.
I bowed with sigh
He didn't reply,
I prayed and knelt,
He went and left.
"Why cut me so ?
Pray, stay, don't go."
He answered slow.
"No. no,"
I entreated hard
"Pray, sit by me, Lord "
He answered,
"Wouldst thou sit by me ?
Then do please sit by thee."
I—Do unto me speak.
He—"Enter the inner silence deep."
I—"I would clasp thee and kiss,
Dear, grant me but this,"
He—"Wilt thou clasp thyself and kiss,
I am one with thee, why miss ?"
My form divine
I am image of charm ?
Why seek the form,
O source of thine ?
With thee I lie.

You outward fly
Don't slight me so,
Nor outward go.

(६) मेरे मन-मन्दिर के अन्दर
प्रेम का प्रकाश अपना तेज विखेरता है।
ऊपर से चुभने वाले काँटों की भांति
प्रेम-पुष्प भी स्वच्छन्द सुगन्ध फैलाता है।
प्रफुल्ल प्रसन्नता का अक्षय स्रोत,
प्रकाशमय किरण जैसी दमक से बहते हैं।
वेसुध करनेवाले मधुर स्वर
मंद पवन के पंखों पर उड़ते हैं।
ओह! शान्ति और कल्याणकर मधुर ध्वनि—
आनन्द, अरे, कैसा दैवी आनन्द विराजमान है।
सुखकर स्वर की लहराती वहिया,
यह परम आनन्द मेरा अपना है!
स्वतंत्र और सुनहले पंखों की चिड़ियाँ,
हर्ष और प्रशंसा के प्रमोदमय गीत गाने वाली।
प्रफुल्लित चश्मे के सुमधुर बच्चे,
वर्धिष्णु प्रभात के गुलाबी रंग,
चरागाहों, झीलों और पहाड़ियों को अलंकृत करने वाले,
शाश्वत अनुकम्पा का दीप्ति मंडल
अमृत के शीतल छींटे मधुरता बरसाने वाले,
मनोहर रंगों के इन्द्र-धनुष की मेहराब!
मुस्कुराहटों के साथ भू-मंडल को रंगने वाले।
ओस के चमकीले नन्हें नन्हें मोती
देखो! अपने हृदय में सूर्य को धरनेवाले।

हर्ष ! प्रेम और प्रकाश का सूर्य,
जीवन का कभी अस्त न होनेवाला सूर्य,
मैं हूँ, मैं हूँ।
वह प्रियतम प्यारा
मेरे निकट, निकटतर आया—
मुस्कराता और कनखियों से देखता हुआ,
गाता बजाता और नाचता हुआ,
मैंने आह भर कर नमस्कार किया,
उसने उत्तर दिया, नहीं
मैंने प्रार्थना की और दण्डवत् की,
वह छोड़कर चला गया।
मैंने कहा कि—
"क्यों इस तरह मुझसे अलग होते हो ?
ठहरो, कृपा कर ठहरो, जाओ नहीं।"
उसने धीमे से उत्तर दिया—
"नहीं, नहीं।"
मैं बहुत गिड़गिड़ाया—
"प्रभु ! कृपा कर मेरे पास बैठो तो।"
उसने उत्तर दिया।
"यदि मेरे पास बैठना चाहता है ?
तो जा अपने पास बैठ।"
मैं—"मुझसे बोलो तो।"
वह—"आन्तरिक गहरी चुप्पी में प्रवेश कर।"
मैं—"मैं तुझे गले लगाऊँ और चूमूँ,
प्यारे, मुझे इतनी भिक्षा दे दो।"

वह—"क्या स्वयं अपने को गले लगाकर चूमेगा ?
मैं हूँ, तुमसे अभिन्न, सर्वथा अभिन्न क्यों भूलता है ?"
मेरा दैवी रूप।
मैं हूँ, तेरी प्रतिमा
क्यों रूपों में फंसता है ?
ऐ कान्ति के मूल !
मै तो तेरे साथ लेटता हूँ,
तू ही बाहर भागता है।
बस, मेरा तिरस्कार न करो ऐसा—
मत बाहर जाओ।



यज्ञ का भावार्थ

जिस समय ब्रह्मा की पवित्र यज्ञ-भूमि पुष्कर में राम का निवास था, उस समय उसे एक पत्र मिला। उसमें यह पूछा गया था कि राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिए पुरातन यज्ञादि विधि का पुनरुद्धार करने के विषय में राम का क्या मत है। उस पत्र के उत्तर में निम्नलिखित पंक्तियाँ वह निकली थीं:—

The highest virtue has no name.
The greatest pureness seems but shame
True wisdom seems the least secure.
Inherent goodness seems most strange.
What most endures is changeless change
The loudest voice was never heard.
The biggest thing no form doth take.

सर्वोत्तम गुण का नाम नहीं।
सर्वोत्तम पवित्रता लज्जा मात्र प्रतीत होती है।
सच्ची बुद्धिमत्ता निशंक नहीं बना पाती।
स्वाभाविक श्रेष्ठता अति अस्वाभाविक जान पड़ती है।
अपरिवर्तनशील परिवर्तन अत्यन्त स्थायी होता है।
अत्यन्त ऊँचा शब्द कभी सुना नहीं जाता।
अत्यन्त विशाल वस्तु कोई रूप धारण नहीं करती।

यदि सूर्य बम्बई के आम्र वृक्षों से कहने लगे मैंने अपना जो प्रकाश और ऊष्णता हिमालय के भोजपत्र और देवदार के वृक्षों को प्रदान की है, वह मैं तुम्हें नहीं दूँगा। तुम्हें चाहिए कि तुम मेरे द्वारा इन्हीं सुन्दर पर्वतों को प्रदत्त शक्ति और अनुकम्पा के प्रादुर्भाव पर ही फलो-फूलो और

बढ़ते रहो, तब तो वे आज्ञ वृत्त थोड़े ही काल में अन्तर्ध्यान हो जायँगे। न तो वाटिका के सेवों पर प्रकाशित सूर्य के तेज से खेतों के फूल जीवित रह सकते हैं, और न बुद्ध भगवान्, ईसामसीह अथवा मोहम्मद के अनुभव से शेक्सपीयर, न्यूटन या स्पेन्सर को शांति मिल सकती है। इसलिए हमें अपने प्रश्न स्वयं हल करने होंगे, और पुरातन काल के सम्माननीय ऋषियों और दार्शनिकों की आँखों से देखने की अपेक्षा सारी बातों को स्वयं अपनी आँखों से देखना प्रारम्भ करना चाहिए।

प्रत्येक स्मृति में स्पष्ट प्रश्न है "पूर्व काल में हम लोग इस बात पर एक मत हुए थे, आइये, विचारें – आज उस विषय में हमारा क्या मत हो सकता है ?" प्रत्येक संस्था सिक्का जैसी होती है, जो मोहर-छाप लगाने से चलता है। कुछ काल चलने के बाद उस सिक्के के अंक मिट जाते हैं और वह पहचाना नहीं जाता, इसलिए पुनः टकसाल में भेजा जाता है। प्रकृति को इस बात में आनन्द आता है कि वह अपने नगों (संसार के पदार्थों) को सजाती-बिगाड़ती और फिर-फिर नया आकार देती है। परिवर्तनहीन परिवर्तन ही जीवन की एक मात्र शर्त है, उसके बिना जीवन आगे नहीं बढ़ता।

और कोई सोचने योग्य नहीं, सोचने योग्य है केवल वही, जिसका भविष्य उसके पीछे और भूतकाल सदा उसके आगे रहता है। निम्न-लिखित विवेचना की प्रत्येक बात गीता, मनुस्मृति और श्रुति के प्रमाणों से पुष्ट की जा सकती है, परन्तु दृढ़ता-पूर्वक जान-बूझकर ऐसा नहीं किया जाता है क्योंकि ऐसा करने से और और विषय छिड़ जायँगे और मुख्य बात रह जायगी। विपक्षी प्रमाण देने लगेंगे और शब्द की सूखी हड्डियां चबानी शुरू होंगी, दूसरे शब्दों में वितण्डावाद खड़ा होगा। इसके सिवा इस शिक्षा की उस हानिकारक पद्धति को उत्तेजना देने का पाप भोगना पड़ेगा; जो तथ्य या वस्तुस्थिति के अध्ययन की अपेक्षा ग्रन्थ के अध्ययन को अधिक महत्त्व देती है।

महान् आचार्य शंकराचार्य्य से एक बड़ी भारी भूल यह हुई कि उन्होंने अपने अनुभव को प्रमाणों के आवरण से ढक दिया। जो सत्य उन्हें स्वानुभव से प्राप्त हुआ था उसे क्यों उन्होंने प्राचीन प्रमाणों को तोड़-मरोड़ कर निकालने का प्रयत्न करने में अपना समय व्यर्थ नष्ट किया। क्या स्वानुभव से भी अधिक विश्वसनीय कोई प्रमाण हो सकता है? उनके पश्चात् जो दूसरे आये (रामानुज, माधव इत्यादि), उन्होंने भी उन्हीं प्राणहीन शब्दों को लिया, और उन्हीं मूल ग्रन्थों से जबरदस्ती अपने मनमाने अर्थ निकाले। इस स्वेच्छा-पूर्ण प्रयत्न से सत्य की गति तीव्र होने के बदले उलटी रुक गई। स्पष्ट शब्दों में भारत के वर्तमान दुःखों का कारण प्राकृतिक क्रम को लौट देना है। हमने अपनी चैतन्य आत्मा को प्राचीन ग्रन्थों के जूतों का गुलाम बना दिया है। श्रुति भगवती की ऐसी दुर्दशा हुई है कि एक पुत्र उसके केशों को एक तरफ खींचता है, दूसरा दूसरी तरफ, तीसरा तीसरी ओर और चौथा चौथी ओर—इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य श्रुति के नाम से अपने मनमाने मत का प्रचार करना चाहता है और इस सबका परिणाम यह होता है कि आचरण की सभ्यता भ्रष्ट हो जाती है। ऐ प्राचीन भारत के ऋषियो और आचार्यो! देखो तो तुम्हारे वंशज किस अधोगति को पहुँच रहे हैं कि वे अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं और नवीनतम वस्तुस्थिति के प्रश्नों को उस भाषा के व्याकरण के नियमों से तय करना चाहते हैं जिसका बोलना न जाने कब से बन्द हो गया है!

प्यारो! नियम और संस्थायें मनुष्य के लिए हैं, मनुष्य नियमों और संस्थाओं के लिए नहीं है! कुछ लोग कहते हैं कि शास्त्रों के द्वारा भविष्य और भूतकाल का गठबन्धन हो जाता है। विचार कितना लुभानेवाला और किस उत्तम रीति से वर्णन किया गया है! परन्तु क्या हम अपने पुराने गुदड़ों में पहले ही से बहुत से सीवन और पैबन्द नहीं

लगा चुके हैं ? सत्य को समझौते की आवश्यकता नहीं, वह झुक नहीं सकता। पृथ्वी दिन-रात सूर्य की परिक्रमा करे, परन्तु सूर्य को पृथ्वी की परिक्रमा करने की आवश्यकता नहीं। भूत और भविष्य का मेल-जोल बनाये रखने के अभिप्राय से क्या विज्ञान के आधुनिक आविष्कार ईसाईयों की बाइबल किंवा दूसरे धर्म ग्रन्थों (जैसे भाष्यादि) के साथ जोड़े जा सकते हैं ? ईश्वरप्रणीत धर्म-ग्रन्थों को स्वयं बोलने दो। ईश्वर में इतनी सज्जनता तो अवश्य होनी चाहिए कि वह अपने वचनों को अनेक अर्थों वाला न बनाये। वह ऐसा क्यों करे कि संसार के लोग सहस्रों वर्ष तक एक भूल से दूसरी भूल में गोते खाते रहें, और जब तक कोई स्वयंभू ईश्वरदूत या टीकाकार आकर उनके अर्थ न बतावे तब तक समझें ही नहीं। ऐसे टीकाकार तथा स्वयंभू ईश्वरदूत पक्षपात-रहित न्यायाधीश होने का दावा तो करते हैं, परन्तु वकीलों की धूर्तता-पूर्ण कुटिलता का सा व्यवहार करते हैं। क्या प्रमाणों से सत्य की स्थापना हो सकती है ? क्या सूर्य दिखाने के लिए छोटे से दीपक की आवश्यकता होती है ? क्या गणित-शास्त्र के किसी सरल से सरल सिद्धान्त की और अधिक पुष्टि हो जाती है, यदि ईसा, मुहम्मद, बुद्ध, ज़रदुश्त अथवा वेद उसकी साक्षी देने लगें ? रसायन-शास्त्र के तत्वों का ज्ञान हमको प्रत्यक्ष प्रयोगों द्वारा होता है। इनका विश्वास मस्तिष्क में भर लेना तो मानों बुद्धि के संहार का पाप अपने माथे पर मढ़ना है। किसी घटना विशेष और त्रिकालाबाधित सत् को—तीनों कालों में एक समान रहनेवाले सत्य को—एक मत समझो। किसी विशेष घटना को हम दूसरे के प्रमाण से मान सकते हैं, परन्तु सत्य स्वतः अनुभव से मालूम होता है। क्या वेदान्त को वाद-विवाद और प्रमाणों से सिद्ध करने की आवश्यकता है ? क्यों हो ? वेदान्त के सिद्धान्त का उचित प्रतिपादन ही उसका अखंडनीय प्रमाण है। सौन्दर्य के आकर्षण के लिए किसी बाहरी सिफारिश की आवश्यकता नहीं होती।

मनमोहक मधुर गान गाकर, नहीं, मीठी-मीठी लोरियाँ गा-गाकर तमोगुणी निद्रा बनाये रखना, जनसमूह के दिल को खुश करना अथवा अज्ञान की लल्लोपत्तो करके अगणित अनुयायियों की मंडली जमा कर लेना कोई कठिन काम नहीं है। परन्तु सत्य ही चिरस्थायी सत्ता है, और जितने भी चराचर पदार्थ हैं वे सब मिथ्या (अवस्तु-मात्र) हैं। धिक्कार है उसे जो दिखावटी रूपों पर सत्य को न्योछावर कर देता है, सत्य को स्वयं अपनी इच्छा के अनुसार विकसित होने दो। सत्यस्वरूप सूर्य को यह भली भाँति विदित है कि उसे किस प्रकार उदय होना चाहिए। घोर निद्रा में सोये हुए लोगो को हिला-हिलाकर जगाने के लिए सत्य अपने ज्ञानरूपी अग्निवाणों के आलापों से घनघोर गर्जना करता है—मैं सत्य हूँ, मैं देह (रूप) की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए आत्मघात करने को कदापि तैय्यार नहीं हो सकता।

अब यज्ञ के विषय में हम स्वतन्त्रतापूर्वक और पक्षपातरहित होकर उसके विभिन्न पहलुओं पर विचार करेंगे।

जैसा कि साधारण रीति से समझा जाता है, हवन यज्ञ का एक मुख्य और आवश्यक अंग है। सबसे प्रसिद्ध तर्क जो इसके वर्तमान अनुयायियों की जिह्वा पर रहता है यह है कि हवन से वायु शुद्ध होती है, उससे सुगन्धमय वातावरण पैदा होता है। यह एक बड़ी दूर की कल्पना है। अन्य उत्तेजक पदार्थों की भाँति, अथवा शरीर-विज्ञान के सफेद झूठों के समान यह सुगन्ध सूँघने मे अच्छी मालूम होने पर भी केवल क्षण भर के लिए चित्त को प्रसन्न करती है, परन्तु बाद में जो प्रतिक्रिया होती है उससे उत्साह और भी मन्द हो जाता है। उत्तेजक पदार्थ हमारी भावी शक्ति भण्डार से कुछ शक्ति उधार ले लिया करते हैं, परन्तु यह ऋण चक्रवृद्धि ब्याज की दर पर उधार मिलता है और ऋण चुकाने की कभी नौबत नहीं आ पाती।

परन्तु सुगन्ध तो हवन का एक अति अल्प अंश है। उसके द्वारा

सबसे अधिक तो कार्बन डाइआक्साइड ही निकलता है जो वस्तुतः बड़ा हानिकारक होता है।

एक समय ऐसा था जब कि भारतवर्ष में मनुष्य-जनपदों की अपेक्षा जंगल अधिक थे। उन दिनों संभव है—घी एवम् अन्य पिष्ट-मय पदार्थों (Hydro carbonates) के जलाने से वनस्पतियों के उगने में कुछ थोड़ी बहुत नगण्य सी सहायता मिलती रही हो, क्योंकि इससे कार्बन-डाइ-आक्साइड (वृक्षों का आहार) पैदा होता है। परन्तु आजकल स्थिति बिल्कुल उल्टी है। एक तो अब यहाँ वे जंगल नहीं रहे और दूसरे जन-संख्या की भी निःसीम वृद्धि के फलस्वरूप वायु में कार्बन-डाइ-आक्साइड अधिक बढ़ गया है। जिससे लोग आलसी बन गये हैं। इन दिनों भारतवर्ष को प्राणवायु (Oxygen) और तीव्र प्राण-वायु (Ozone) की विशेष आवश्यकता है, न कि कार्बन डाइ-आक्साइड की।

यह बात याद रखना चाहिए कि अग्नि में हवन करने और लोगों को भोजन कराने का एक ही सा रासायनिक परिणाम होता है। अतः अमूल्य घृत को कृत्रिम अग्नि के मुँह में झोंकने के बदले सूखी रोटी के टुकड़े उस जठराग्नि में क्यों नहीं डाले जायं जो लाखों भूखे परन्तु साक्षात् नारायण स्वरूप गरीब लोगों के अस्थि-मांस को खाये जा रही है? सचमुच उसी हवन की आजकल भारत में विशेष आवश्यकता है।

फिर ज़रा सोचिये यदि आपने एक दिन हजार, दो हजार आदमियों को भोजन करा भी दिया तो इससे लाभ क्या होगा? यह बिना विचारे दान करने की प्रथा तो केवल भले मानस भिखारियों की ही संख्या बढ़ाती है। यह इतना सारा दुःख भारतवर्ष में क्यों है? बिना सोचे-विचारे दान देने की प्रथा से पात्र-कुपात्र का विचार किये बिना दान करना ही भारतवर्ष की दरिद्रता का एक मूल कारण है। एक फ्रेंच ग्रन्थकार का कथन है कि दान जितना दुःख दूर करता है उससे

अथवा उत्पन्न कर देता है। और जिस नवीन दुःख को वह पैदा करता है, उसके अर्द्ध भाग को भी वह निवारण नहीं कर सकता। दान का निर्णय उसके परिणाम से करना चाहिए, न कि दाता की मंशा से। वह दुर्बलचित्त यात्री जो किसी हट्टे और आलसी भिखारी को एक-आध पैसा दे देता है, भले ही अपने मन में सोच ले कि उसने परलोक में अपने जीव की रक्षा के लिए कुछ पुण्य कमाया है—यह बात ठीक हो या न हो, परन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि उसने इस लोक में अपने राष्ट्र के नाश में अवश्य कुछ हाथ बटाया है।

हमारे सामने मुख्य प्रश्न यह है कि हमें ठीक तरह का यज्ञ करना चाहिए—अर्थात् दीन और अनाथ लोगों की सेवा और रक्षा इस रीति से करना चाहिए कि हमारे मूल उद्देश्य का नाश न हो। ऐसी परिस्थिति में जो सबसे बड़ा दान आप किसी को दे सकते हैं वह है केवल विद्या-दान। आज आप किसी मनुष्य को भोजन करा दीजिए, कल फिर उसे वैसी क्षुधा लगेगी। परन्तु यदि इसके बदले आपने उसे कोई धन्धा सिखा दिया, तो आप उसे जन्म भर रोटी कमा खाने के योग्य बना देंगे। हाँ, जो विद्या उसे सिखाई जाय वह ऐसी हो कि उससे उस मनुष्य का जीवन वास्तविक रूप से सार्थक हो जाय। जैसे अन्य ऊटपटांग कामों से आजकल जूता बनाने का काम सीख लेना अति उत्तम हो सकता है।

जो लोग तुमसे धन, ज्ञान, शक्ति अथवा पद में छोटे हों, उनके साथ तुम्हें वैसी ही सहानुभूति प्रकट करना चाहिए और उनकी वैसी ही सहायता करनी चाहिए जैसी तुम अपने बच्चों को करते हो। बस, प्रतिफल की आशा को हृदय से निकालकर मातृपद के इस परम सुख को भोगो। माता का पद बड़ा गौरवशाली है। उसमें स्थिर हो, सबको आध्यात्मिक भोजन दो। उत्साह, ज्ञान और भक्ति से अपने बच्चों की सेवा करो—यही सबसे बड़ा निष्काम यज्ञ है।

किसी अन्य अवसर पर हम भारतवर्ष के कर्मकांड के इतिहास की विस्तृत चर्चा करेंगे। भारतवर्ष में, प्राचीन समय में जबकि समाज आजकल की तरह बनावटी नहीं था, खान-पान, वस्त्राभूषण, घरद्वार रीति-भाँति की ओर लोगों का इतना ध्यान न था और वर्तमान कश्मीर के कुछ भागों के अनुसार फल-फूल के वृक्षों की सर्वत्र अधिकता थी, जब अमेरिका के वर्तमान मूल निवासियों की भाँति भारतवर्ष के लोगों को कपड़े की विशेष आवश्यकता न थी, जबकि छायादार वृक्ष और पहाड़ों की गुफायें लोगों को घर का काम देती थीं; उस समय लोगों की मानसिक और शारीरिक संचित शक्ति के बहाव के लिए कोई दूसरा मार्ग न होने के कारण वह शक्ति देवताओं से संपर्क करने की ओर झुकी, अर्थात् हर प्रकार के यज्ञ होने लगे। मूलतः ये सारे यज्ञ देवताओं से ठीक-ठीक और सच्चे व्यवहार के प्रादुर्भाव मात्र थे। उनमें याचना, खुशामद, अपने को तुच्छ समझना, दास-वृत्ति और 'भिक्षां देहि' का नाम तक न था। हमारे पूर्वजों ने अपनी समझ के अनुसार दैवी शक्तियों से बराबरी के नाते यज्ञों के रूप में व्यवहार किया था। यदि उन यज्ञों को पंच महाभूतों के देवताओं के साथ आदान-प्रदान का साधन कहा जाय तो अयुक्त न होगा। उनमें आजकल का सा स्वार्थमय व्यापारी ढंग बिलकुल न था, थी उनमें केवल पारस्परिक लेन-देन की शुद्ध भावना और सच्ची वणिक् वृत्ति।

ये सारे यज्ञ एक 'यदि' पर अवलम्बित थे! यदि तुम्हें वृष्टि इष्ट है तो अमुक यज्ञ करो, तुम्हें सन्तान चाहिए तो अमुक यज्ञ करो, यदि तुम्हें जय लाभ करना है तो दूसरे प्रकार का यज्ञ करो, और यदि तुम्हें धन चाहिए तो तीसरे प्रकार का यज्ञ करो इत्यादि, इत्यादि।

इस प्रकार 'यदि' से संबंधित ये यज्ञ हमारी इच्छाओं से बँधे होने के कारण केवल (सभी कर्त्तव्यों की भाँति) ऐच्छिक थे। प्रारम्भ में वे अनिवार्य न थे, धीरे धीरे वे रूढ़ हो गये और उन्होंने लोकाचार का

रूप धारण कर लिया। इस प्रकार स्वयं ही हमने उनको कर्त्तव्य रूप से अपने सिर चढ़ा लिया।

आगे चलकर भारतवर्ष के इतिहास में हम यह देखते हैं कि यज्ञों का स्थान पौराणिक कर्मकांड ने ले लिया था। हम यह भी देखते हैं कि महाभारत के गृहयुद्ध ने देश में व्यापक हेर-फेर पैदा कर दिया था। धार्मिक और राजकीय क्रान्तियों से राष्ट्र की सम्पूर्ण व्यवस्था ही अस्त-व्यस्त हो गई। प्राचीन देवताओं के प्रति हमारी भावना बिलकुल बदल गई। दैनिक आवश्यकतायें बढ़ गईं, लोगों के पास इतना अत्यधिक समय न था कि एक एक यज्ञ करने में महीनों और वर्षों लगा दें! आप देख सकते हैं, प्राचीन यज्ञ के स्थान में पौराणिक कर्मकांड हेतु माना गया है। इसके द्वारा हमें एक ऐसी परम्परा मिलती है कि हम अपने धर्म को तनिक भी हानि पहुँचाये बिना, समय की आवश्यकतानुसार अपने कर्म-कांड में आवश्यकीय परिवर्तन कर सकते हैं।

राम यह कहे बिना नहीं रह सकता कि स्मृति, रीति-रिवाज, आचार-विचार, विधि, संस्कार (अर्थात् सम्पूर्ण कर्मकांड) समयानुसार केवल बदलते ही नहीं रहे हैं, परन्तु एक ही देश के विभिन्न भागों में विभिन्न रूप में चलते रहे हैं। किसी समाज का जीवन उसके प्रवाह, बाढ़ और उचित परिवर्तन पर निर्भर करता है। 'बदलो या मरो' प्रकृति का यह एक अटल सिद्धान्त है।

आधुनिक विकासवाद के क्षेत्र में एक सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रेसीडेन्ट डाक्टर डेविड स्टार जोर्डन सामाजिक विज्ञान के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए हमें स्मरण दिलाता है कि समाज की पूर्ण से पूर्ण अवस्था भी हमें सदैव अपूर्ण प्रतीत होती है, क्योंकि अत्युन्नत समाज गत्यात्मक होता है। जो समाज स्थित्यात्मक होता है उसकी बाढ़ रुक जाती है, जैसे अत्यन्त उन्नत सजीव पिण्ड बहुत ही अपूर्ण प्रतीत रहता है। स्थिति के साथ पूर्णतया मेल बनाये रखने के लिए

हमको हमेशा परिवर्तन करना ही पड़ता है, क्योंकि स्थिति सदैव बदला ही करती है। ऐसा स्थित्यात्मक मनोराज्य जो लगातार युगयुगान्तरों तक बना रहे, जिस में संघर्ष और परिवर्तन का लेश मात्र न हो, जिसमें सब लोग सुखी और सुरक्षित रहें, मनुष्य और जगत् सम्बन्धी हमारे ज्ञान में तो उसकी कहीं कोई आशा दिखाई नहीं पड़ती।

इसलिए अपनी परिस्थिति के अनुसार हमें अपना कर्मकांड अवश्य बदलना चाहिए। वैदिक काल के ऋषियों की आवश्यकताओं से हमारी आवश्यकतायें बिलकुल भिन्न हैं। वे सब "अदियां" जिन पर सम्पूर्ण कर्मकांड अवलम्बित है, बिल्कुल बदल गई हैं। आजकल हमारे सामने यह प्रश्न नहीं है कि "यदि तुम्हें गाय-भैंसों की जरूरत है तो इन्द्र देव को हव्य भेंट करो" अथवा "यदि तुम्हें अधिक सन्तान की आवश्यकता है तो प्रजापति को प्रसन्न करो" आदि-आदि। परन्तु आज कल के कर्मकांड की समस्या ने निम्न स्वरूप धारण किया है—"यदि तुम उद्योग-धन्धों और कला कौशल में नित्यप्रति वृद्धि करनेवाली वर्तमान शताब्दी में जीवित रहना चाहते हो, यदि तुम्हारी यह इच्छा नहीं है कि तुम राजनैतिक यक्ष्मा से पीड़ित होकर घुल-घुलकर मर जाओ, तो विद्युत्‌रूपी मातरिश्वा पर अपना अधिकार जमा लो, भापरूपी वरुण को अपना दास बना लो, कृषि शास्त्ररूपी कुबेर से परिचय बढ़ाओ। इन देवताओं से तुम्हारा परिचय कराने वाले पुरोहित होंगे वे वैज्ञानिक और कलाविद् जो इन विद्याओं को पढ़ाते हैं।

धर्मशून्य भाषा के प्रयोग का अपराध राम पर न लगाना। यहाँ हर एक वस्तु परिवर्तनशील है। देश का स्वरूप प्रायः बिल्कुल बदल गया है, राजसत्ता बदल गई है, भाषा बदल गई है, लोगों का रंग (वर्ण) भी बदल गया है, तब फिर आपके देवता ही क्यों स्वर्ग में बैठे-बैठे अपने पालने में झूला करें, समय के साथ वे भी क्यों न बदते रहें ? क्यों न

वे ही नीचे उतरकर हम लोगों के साथ स्वतन्त्रता से मिलें-जुलें, ताकि सभी लोग उन्हें भली-भाँति जान जायें?

प्यारे महाभाग देश बान्धवो! राम यह तो कदापि नहीं कह सकता कि तुम सूर्य्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, विद्युत्, मेघ वरुण आदि में "एकं सत्" ईश्वर के दर्शन न करो, जैसा कि प्राचीन आदरणीय ऋषियों ने किया था। वरन् उसका कहना तो यह है कि तुम प्रकृति में ईश्वर को प्रकृति रूप से अवश्य देखो। परन्तु जरा अपनी दृष्टि और भी फैलाओ, और रासायनिक प्रयोगशाला और विज्ञान भवन (Science room) में भी ईश्वर के दर्शन करो। रासायनिक की मेज़ भी तुम्हें यज्ञ की अग्नि के समान पवित्र प्रतीत हो। पुरातन होमाग्नि को अथवा यज्ञ की अग्नि को तुम पुनर्जीवित नहीं कर सकते, परन्तु उस पुरातन काल के प्रेम, आदर और भक्ति का पुनरुद्धार तो तुम कर सकते हो और तुम्हें अवश्य करना चाहिए। दूसरे शब्दों में अपने वर्तमान कामों में इन्हीं उच्च भावनाओं का प्रयोग करो जिनका करना समय की आवश्यकतानुसार तुम्हारा कर्तव्य है। विद्वान् आगेसिज़ प्रश्न करता है कि "क्या प्रकृति का अध्ययन करना ईश्वर के विचारों को फिर से दुहराना नहीं है? ऐसा करो कि तुम्हारे सब कामों में पवित्रता और शुचिता का भाव भर जाय। यदि मैं यज्ञ की अग्नि को प्रज्वलित नहीं कर सकता तो मैं लुहार की अग्नि को यज्ञाग्नि के सदृश पवित्र बनाऊँगा। प्यारे! यह तो तुम्हारी सर्वत्र राम-दृष्टि पर निर्भर है कि तुम किसान की कुदाली को इन्द्र का वज्र बना लो।' इसी ब्रह्म अथवा आत्म दृष्टि का प्राप्त करना ही सच्चे यज्ञ का मुख्य मन्तव्य है।

अपनी वर्तमान राष्ट्रीय स्थिति का अनुभव करने के लिए तुम अपने भावी जीवन या भावी आत्मा को बिलकुल भुलाये देते हो। ऐसे भयंकर नास्तिक मत बनो। अपने जीवनकाल में तुम्हारा मुख्य कर्तव्य अपने

भविष्य-जीवन के प्रति है। इसलिए इस तरह जीवन व्यतीत करो कि तुम्हारा आदर्शमय जीवन अर्थात् तुम्हें जैसा होना चाहिए, वैसा प्रत्यक्ष रूप से बन जाना तुम्हारे लिए सुलभ हो जाय। इस तरह से जीवन व्यतीत करो कि पचास वर्ष के पश्चात् भी तुम्हें (भावी आत्मा को) स्वयं अपने ऊपर लज्जा उत्पन्न न हो। इस ढंग से रहो कि भारतवर्ष की भावी सन्तानों में तुम्हारी भावी आत्मा को निराश और भग्नहृदय न होना पड़े।

हे धर्मपरायण हिन्दुओ! अपने अन्तःकरण को गुलामी से मुक्त करो। कर्मकांड के दो दो विधानों की सेवा अपेक्षित नहीं। जिन वस्त्रों की तुम्हें सचमुच जरूरत है उनके साथ तुम्हें उन जीर्ण-शीर्ण और अनुपयुक्त वस्त्रों को पहनने की क्या बात? क्या इसीलिए वे उपयोगी हो सकते हैं कि वे तुम्हारे पूर्वजों के हैं, अथवा इसलिए कि वे प्राचीन संसार के स्मृति में तुम्हें भेंट स्वरूप प्राप्त हुए हैं। जो दोष मनुष्य और राष्ट्रों को दिवालिया बनाता है वह यह है कि लोग अपने मुख्य ध्येय से मुँह मोड़ इतर दिशाओं में काम करने को तैयार हो जाते हैं। दृढ़-संकल्प मनुष्य ऐसे छोटे-मोटे कामों से साफ़ इनकार कर देता है।

यज्ञ का अर्थ है देवताओं को भेंट करना। अब प्रश्न यह है कि वेदान्ती (और कभी-कभी वैदिक) परिभाषा में 'देव' शब्द का अर्थ क्या है? 'देव' का अर्थ है प्रकाश और जीवनदायिनी शक्ति। इसी भाँति बहु वचन में 'देवता' शब्द का अर्थ है, उस ईश्वरीय शक्ति के विभिन्न प्रदुर्भाव जो या तो आधिदैविक शक्तियों के रूप में प्रकट होते हैं या आध्यात्मिक शक्तियों के रूप में। फिर देवता उस समष्टिरूप शक्ति को कहते हैं, जो आधिदैविक और आध्यात्मिक दोनों लोकों में पाई जाती है। 'चक्षु' शब्द एक व्यक्ति की दृष्टि का नाम है। परन्तु चक्षु इन्द्रिय के देवता का अर्थ है सब प्राणियों में देखने की शक्ति और उसका नाम है आदित्य। उसका वाह्य प्रतीक विश्व-नेत्र तेजोमय सूर्य

के रूप में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। हाथ की इन्द्रिय का अर्थ एक मनुष्य के हाथ की शक्ति, परन्तु हस्तेन्द्रिय के देवता से तात्पर्य है सब हाथों को हिलानेवाली शक्ति। समष्टिरूप से इस शक्ति का नाम 'इन्द्र' है। इसी प्रकार जब कभी हम किसी इन्द्रिय के देवता के विषय में बात करते हैं तब यदि उसका कुछ अर्थ हो सकता है तो केवल वही जो ऊपर दर्शाया गया है।

अब यज्ञ में देवताओं के प्रति बलिदान करने का युक्तिसिद्ध अर्थ क्या हो सकता है? इसका अर्थ यह है कि हम अपनी व्यक्तिगत शक्ति को तद्विषयक समष्टि शक्ति के अर्पण कर दें, जिससे मेरी छोटी आत्मा उस सर्वव्यापी आत्मा के साथ तदात्म हो जाय, मैं अपने पड़ोसियों को अपना ही रूप अनुभव करूँ और अपनी इच्छा को ईश्वरीय इच्छा में लीन कर दूँ। उदाहरणार्थ आदित्य को भेंट चढ़ाने का तात्पर्य यह है कि हमारा यह दृढ़ संकल्प और निश्चय हो जाय कि हम अपने अयोग्य व्यवहार से किसी भी आँख को क्लेश न पहुँचायेंगे। जो भी हमारी ओर देखे उसकी ओर प्रेम, प्रसन्नता और शुभेच्छाओं की ही भेंट चढ़ाया करें, जिससे सभी नेत्रों में ईश्वर के दर्शन होने लगें। यही आदित्य के प्रति भेंट चढ़ाना है।

इन्द्र को भेंट चढ़ाने का अर्थ यह है कि देश के सारे हाथों के उपकारार्थ श्रम किया जाय। व्यष्टिमात्र समुचित आहार को योग्य रीति से ग्रहण करके ही पोषित होता है, हाथ और उसके स्नायु काम करने ही से पुष्ट होते और बढ़ते हैं। इस प्रकार इन्द्र को हव्य दान देने से तात्पर्य है भारतवर्ष की क्षुधा मिटाना जो कि लाखों गरीब आदमी यहां बेरोजगार हैं, उनके लिए जीविका ढूँढ़ी जाय और उन्हें किसी धन्धे में लगा दिया जाय। हाँ, इन्द्र को जब इस प्रकार का हव्य मिल जायगा, तो देश भर में समृद्धि छा जायगी। जिस समय सारे हाथ काम में लग जायँगे, तब दरिद्रता बेचारी कहाँ रह सकती है? इंगलैंड में फसल बहुत कम

होती है, फिर भी देश धनधान्यपूर्ण है। इसका कारण यह है कि हस्त-देवता (इन्द्र) को वहाँ कला-कौशल और उद्योग-धन्धों के अन्न से इतना तृप्त कर दिया जाता है कि उसे अजीर्ण तक होने लगा है। सब हाथों को मिलाजुलाकर सबके हित के लिए काम में लगाना ही इन्द्रयज्ञ है। विश्व के हित में सब मस्तिष्कों का मिल जाना ही वृहस्पति यज्ञ है। हृदय के देवता चन्द्रमा का यज्ञ यह है कि हम सब अपने हृदयों को एक कर लें। इसी प्रकार अन्य देवताओं के लिए यज्ञ किये जाते हैं।

संक्षेप में यज्ञ का अर्थ है कि अपने हाथों को सारे हाथों के प्रति, सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रति अर्पण कर देना, अपने नेत्रों को सब नेत्रों के लिए अथवा सारे समाज के लिए समर्पण करना, अपने मन को सब मनों के प्रति भेंट करना, अपने हित को देश हित में लीन करना, और सबको ऐसे भान करना कि मानों वे सब मेरा ही स्वरूप (आत्मा) हैं। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ है 'तत्त्वमसि' (वह है तू) को व्यवहार में लाना और अनुभव करना। जैसे शूली पर चढ़ने के पश्चात् ईसा के दिव्य स्वरूप का पुनरुत्थान हुआ था उसी प्रकार देहात्म भाव के वध के पश्चात् आप ही विश्वात्मरूप से उठता है। यही वेदान्त है!

Take my life and let it be
Consecrated, Lord to Thee.
Take my heart and let it be
Full saturated, Love, with Thee.
Take my eyes and let them be
Intoxicated, God with Thee.
Take my hands and let them be
For ever sweating, Truth, for Thee.

प्राण, महा प्रभु! स्वीकृत कीजे, निज पद अर्पित होने दीजे।
अन्तःकरण नाथ! लै लीजे, निज से उसे, प्रेम भर दीजे।

स्वीकृत कीजे नेत्र हमारे, निज से मतवाले कर प्यारे।
लीजे मत प्रभु! हाथ हमारे, सदा करें श्रम हेतु तुम्हारे।

[इस कविता में 'प्रभु' शब्द से तात्पर्य आकाश में बैठे बादलों में जाड़े के मारे सिकुड़नेवाले किसी अदृश्य हौवा से नहीं है]।

'प्रभु' का अर्थ है सम्पूर्ण मानव जाति।

यह यज्ञ प्रत्येक मनुष्य को करना होगा। और यही हमारा सार्वभौमिक धर्म होना चाहिए। भारतवर्ष कान खोलकर सुन! इसे स्वीकार कर, नहीं तो तेरा अन्त है। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। ऐसा किये बिना जीवन नहीं हो सकता?

राम तुम्हें बताता है कि तुम्हारे शास्त्रों में जो यह लिखा है कि यज्ञ के समय देवता प्रत्यक्ष मूर्तिमान हो जाते हैं, यह बात अक्षरशः ठीक है। परन्तु इससे तो केवल यही सिद्ध होता है कि सामुदायिक एकाग्रता में बड़ा भारी प्रभाव है। मनोविज्ञान की आधुनिक खोजों से यह सिद्ध हुआ है कि एकाग्रता का प्रभाव किसी अवसर पर उपस्थित एकहृदय व्यक्तियों की संख्या के वर्ग के अनुपात में बढ़ता है। यही सत्संग की महिमा है। यदि अकेला राम किसी कल्पना को मूर्तिमान् कर सकता है, तो एक-हृदय लाखों लोग एक ही मंत्र को जपनेवाले एक ही स्वरूप का ध्यान करनेवाले कैसे उस कल्पना को मूर्तिमान् किए बिना रह सकते हैं?

परन्तु इससे क्या सिद्ध होता है? इससे सिद्ध होता है कि तुम्हारा सर्वमय आत्मा ही सब देवताओं का पिता और कर्ता-धर्ता है। परन्तु यही देवता जो तुम्हारे मन की कल्पना मात्र हैं, तुम्हारे दिखावटी मिथ्या, परिच्छिन्न और एक-देशीय क्षुद्र 'अहं' पर शासन करते हैं। तुम स्वयं अपने भाग्य के कर्ता हो। चाहे धूल और गर्द में पड़े हुए नीच दास बने रहो, चाहे अपने जन्म-सिद्ध अधिकार से वैभव का मुकुट धारण करो। जो अच्छा लगे वही करो. बोलो, किसे पसन्द करोगे?

राम मनोविज्ञान की दृष्टि से यह भी जानता है कि ठीक-ठीक प्रतीकों और संकेतों के द्वारा किसी विचार या कल्पना को मन में जमाने से कैसा अपूर्व फल होता है। जो मनुष्य पूर्ण निश्चय के साथ आत्म-समर्पण में लवलीन है, मानों पाणिग्रहण में अपने हाथों को विश्व के हाथों सौंप रहा है, ऐसा मनुष्य, जब उसका मन अनन्य भक्ति से गदगद् हो रहा हो, जब उसका सारा शरीर इस पवित्र संकल्प से रोमांचित हो रहा है, यदि वाह्यरूप से भी अग्नि में हवि डाले कि उसकी अल्पात्मा विश्वात्मा के प्रति उत्सर्ग हो जाय और मंत्रों को उच्चारण करते हुए अपने आन्तरिक संकल्प को उच्च स्वर में 'स्वाहा' शब्द से प्रकाशित करे; तो इन प्रतीकों के द्वारा उसका पवित्र कार्य अमिट और अटल हो जायगा, इसमें रत्तीभर संदेह नहीं। परन्तु हाय रे दुर्दैव! यहाँ तो केवल प्रतीक ही प्रतीक है। उत्सर्ग का नामोनिशान नहीं, फिर उस ढोंग से क्या आशा की जा सकती है? जहाँ विचार और भावना का बिलकुल अभाव हो और बलात् अर्थ-शून्य आडम्बर हमारे गले मढा जाता हो वहाँ तो शरीर है, प्राण नहीं, बिल्कुल निर्जीव देह। इस निर्जीव शव को तुरन्त जला डालो, उसकी सेवा-सुश्रूषा से लाभ! यह कार्य तो उलटा बड़ा हानिकारक और घातक होगा। अब उसे छोड़ सजीव नूतन विधियों को क्यों न स्वीकार कीजिये।

लोग कहते हैं कि नदी को अपने पुराने पाट में बहने में आसानी होती है, इसलिए हमें भी प्राचीन संस्थाओं में नवीन जीवन डालने का प्रयत्न करना चाहिए! राम कहता है कि यह बात प्रकृति विरुद्ध है। एक भी ऐसी नदी का नाम बताओ जो एक बार अपना पुराना मार्ग छोड़कर फिर उसी रास्ते से बहने लगी हो? एक भी ऐसा उदाहरण बताओ जहाँ शरीर का प्राण निकल जाने पर फिर नवीन प्राण ने प्रवेश किया हो? पुरानी बोतलों में नई मदिरा भरने से काम नहीं चलेगा। जिस गन्ने का एक बार रस निकल गया, उसमें फिर रस नहीं आ सकता। उसे जला देना चाहिए। पदार्थों तथा

उनके परस्पर सम्बन्ध सदैव बदलते रहते हैं। जिस रूप-रंग या सम्बन्ध को उन्होंने एक बार त्याग दिया उसे वे फिर नहीं ग्रहण करते। आओ, हम इन यज्ञ की आहुतियों को ही इस ज्ञानाग्नि में आहुति कर दें। हम तो यज्ञ के सच्चे भावार्थ को अपने देश-कालानुसार रीति-रिवाजों में वर्तेंगे। कुछ लोग ऐसे हैं जिनको सदैव प्राचीन वैभव का स्मरण करते रहना ही देश-भक्ति लगती है। नवीन स्थितियों में इनकी तुलना उन घोंघों से की जा सकती है जो अपने पुराने घर को पीठ पर लादे फिरते हैं। अथवा ये ऐसे दिवालिये महाजन हैं जो बैठे-बैठे अपने पुराने रद्दी बहीखातों के ही पन्ने रात-दिन लौटा-पौटा करते हैं। इस विचार में समय मत गँवाओ कि भारतवर्ष पहले कैसा बढ़ा-चढ़ा था। अपनी सारी अनन्त शक्ति एकत्रित करो और ऐसा भाव मन में धारण करो कि भारतवर्ष फिर कैसी उन्नति करेगा।

इतिहास और व्यक्तिगत निरीक्षणों से यह सिद्ध होता है कि जब लोग एक जगह एकत्रित होते और उनकी आँखें और हाथ परस्पर मिलते हैं, उस समय उनके अन्तःकरणों के भी एक होने का अनुपम प्रसंग उपस्थित होता है। ज्ञातत: अथवा अज्ञातत: एक दूसरे के विचारों और भावनाओं का आदान-प्रदान होने लगता है, लोगों की भावनाओं में एक ही उत्ताप, उनके विचारों में एक सी भूमिका, उनकी अध्यात्म-वृत्ति में एक ही शक्ति का सृजन होने लगता है। इससे पारस्परिक प्रेम और ऐक्यता उत्पन्न होती है। हजरत मुहम्मद की बुद्धिमानी तो इसी से प्रत्यक्ष है कि उसने उद्दण्ड और लड़ाकू अरबों को प्रतिदिन ईश्वर के सम्मुख कम से कम पाँच बार उपस्थित होने के लिए बाध्य कर दिया। इस रीति से उसने बिखरे हुए लोगों में से एक संगठित राष्ट्र का निर्माण करने में सफलता प्राप्त की।

यज्ञ, तीर्थ, मेले, मंदिर न्यायालय, मठ, भोजनालय, विवाहोत्सव, श्मशान-यात्रा, सभा में, सामाजिक वार्षिकोत्सव, तथा आजकल के

सम्मेलन और राष्ट्रीय सभाओं के जलसे, ये सब भारतवर्ष में लोगों के एकत्रित होने के स्थान हैं। इसी प्रकार पश्चिम में गिरजाघर, होटल, प्रदर्शनी, पर्यटन, विश्वविद्यालय, सार्वजनिक व्याख्यान, क्लब और राजनैतिक सम्मेलन इत्यादि साधारणतः लोगों को एकत्र होने का अवसर देते हैं। परन्तु विशेषतः ऐक्यता-वर्धक शक्ति उन जमघटों में होती है जिनमें हम सात्विक भाव से मिलते हैं और जहाँ हम ऐक्यता के वृक्ष को प्रेम के पवित्र जल से सींचते और दृढ़ करते हैं। चिरस्थायी ऐक्यता वहीं उत्पन्न हो सकती है जहाँ अन्तःकरण एक होते हैं। केवल शरीरों के मेल से कोई उत्साहजनक परिणाम नहीं उत्पन्न होता, वरन् कभी-कभी उलटे ईर्ष्या, वैमनस्य आदि का जन्म होता है। खींच-खाँच करके केवल बाहरी ऐक्यता पैदा करने की कोई आवश्यकता नहीं। जहाँ अन्तःकरण की ऐक्यता नहीं होती, वहाँ की मैत्री उन स्फोटक पदार्थों के मिश्रण से अधिक भयंकर होती है जो एकत्र होते ही धड़ाम से फट जाते हैं। केवल पैरों के बल दो हृदय एक दूसरे के समीप नहीं आ सकते। हमें इस बात की चिन्ता और आवश्यकता न होनी चाहिए कि हमारे मित्रगण और अनुयायी सदा हमारे पास ही रहें, वरन् जीवन के मूल स्रोत और उत्पत्ति स्थान से हम जितना ही अधिक सान्निध्य प्राप्त करेंगे उतनी ही अधिक स्वतः अपने पास मित्र पाने की संभावना बढ़ती जायगी। बेंत का वृक्ष पानी के समीप रहता है और अपनी जड़ें उस तरफ फैला देता है जहां बहुत से पेड़ आपही आप पैदा हो जाते हैं। इसी प्रकार हमें भी उसी अनादि चैतन्यमय मूल स्रोत को अपना आधार बनाना चाहिए। फिर हमारे स्वभाव के अनुरूप बहुत से बेंत रूपी मित्र अपने आप हमारे पास जमा हो जायँगे। सबसे पहले आवश्यकता केवल इस बात की है कि तुम सत्य स्रोत का आश्रय लो।

फिर, दूरबीन के शीशे मिलकर तभी सामंजस्यपूर्वक काम कर

सकते हैं कि जब उनका किरणकेन्द्रान्तर (focal lengths) भी ठीक बैठा हुआ हो। सौर मण्डल एक सामंजस्यपूर्ण इकाई है, क्योंकि उसके विभिन्न ग्रह एक आनुपातिक दूरी में चलते हैं। हमारे कुछ मित्र ऐसे होते हैं कि यदि उनके साथ हमारी घनिष्ठता कुछ बढ़ जाय या कम हो जाय तो हम उनके साथ काम नहीं कर सकते। मित्र-मण्डली में प्रेम-पूर्ण और स्थायी ऐक्यता प्राप्त करने के लिए यह परम आवश्यक है कि पारस्परिक आध्यात्मिक अन्तर एक समुचित अनुपात में रक्खा जाय। कभी कभी ऐसा होता है कि लोग या तो बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध करने या फिर बिल्कुल ही अलग हो जाने की भूल करते हैं। वे प्रत्येक मनुष्य पर अविश्वास और शंका करने लगते हैं। प्रेम, मेल और एकता उसी समय प्राप्त और स्थिर की जा सकती है, जब लोगों की दूरी में यथोचित अन्तर रक्खा जाय।

राष्ट्रीय उत्सवों में ऐसा सुधार करना चाहिए, जिससे सभी श्रेणी के लोगों को एक साथ एकत्रित होने का अवसर मिले, जिससे वे आध्यात्मिक अथवा मानसिक समानशीलता के अनुसार अपने सहधर्मी ढूंढ कर उनसे एकता प्राप्त कर सकें और इस रीति से प्राकृतिक नियमों के अनुसार अपने पारस्परिक सम्बन्धों की दूरी स्थापित कर सकें। राष्ट्रीय हेमन्तोत्सव दक्षिण भारत के सुखदायक प्रदेशों में, राष्ट्रीय ग्रीष्मोत्सव उत्तरी पर्वतों के प्राकृतिक दृश्यों में, बसन्तोत्सव बंग देश में, और शरद् ऋतु का सम्मेलन पश्चिमीय हिन्दुस्तान में होना चाहिए। ये उत्सव किसी नाम विशेष व सम्प्रदाय विशेष की सीमा से ऊपर सर्वथा राष्ट्रीय होना चाहिए, जो सभी श्रेणियों के प्रतिनिधियों की समितियों द्वारा संचालित हों। वहाँ पर कलाकौशल की प्रदर्शनी, हर प्रकार की दुकानें, पदार्थ-संग्रहालय, पुस्तकालय, प्रयोग-शालाएँ, क्रीड़ा-भवन, व्याख्यानों के लिए मैदान, सामाजिक सभाएँ, परिषदें, कांग्रेस और अन्त में किन्तु महत्वपूर्ण राष्ट्रीय नाट्यशालायें हों जिनमें भिन्न-

भिन्न प्रान्तों के अनेकानेक धर्म और पंथ के लोग एकत्रित हों, और इस प्रकार जीवन के गम्भीर और विनोदप्रिय—दोनों अंगों की पूर्ति की सामग्री जुटायी जाय। और वहाँ पर, प्राचीन भारत की प्रथा के अनुसार, भगिनी अपने भाई के साथ, पत्नी अपने पति के साथ और पुत्र अपनी माताओं का हाथ पकड़े हुए इधर-उधर टहलते दिखाई दें, जैसा कि वर्तमान समय में बम्बई में रिवाज है। इसके साथ ही साथ यह भी हो कि सब श्रेणी के, सब पंथों के और सब धर्मों के वक्ताओं को प्रेममयी वक्तृता देने के लिए एक सामान्य सर्वमान्य व्यासगद्दी हो।

राष्ट्रीय एकता की वृद्धि में एक दूसरा साधन है राष्ट्रीय साहित्य का उत्पादन, उसकी उन्नति और उसकी परिष्कृति और यह कार्य देश की वर्तमान जीवित देशी-भाषाओं में एकता पैदा करके ही हो सकता है।

इसी उद्देश से भिन्न-भिन्न स्थानों पर 'ॐ मन्दिर' भी स्थापित किये जा सकते हैं। वहाँ सभी धर्मों के लोग स्वतन्त्रता से आ-जा सकें, पढ़ें, ध्यान करें, शान्ति से प्रार्थना करें, और एक दूसरे को सहानुभूति-दया और प्रेम की दृष्टि से देखें, परन्तु आपस में बातचीत के बिना ही।

वहाँ देश के युवक इकट्ठे होकर खुले मैदान में व्यायाम भी करें और राम की रीति से प्रत्येक शारीरिक गति को एक आध्यात्मिक भावना-सूचक चिह्न में बदल दें, जिससे वह क्रिया ईश्वर-निमित्त और ईश्वर को स्वीकार्य यज्ञ में आहुतिरूप हो जाय।

स्नान करते समय हमें उपयोगी और हृदय को पवित्र करनेवाले गीत गाना चाहिए, पर वे ऐसी भाषा में न हों जिसे हम समझ ही न सकें।

ऋतु के अनुसार तरुण-मंडली नदियों के किनारे, हरी घास पर, अथवा वृक्षों की छाया में, आकाशमंडल के नीचे एक साथ बैठकर भोजन करे। और प्रत्येक ग्रास के भीतर और बाहर से अर्थात् मन और वचन से ॐ ॐ का उच्चारण करती रहे। राष्ट्रीय गीत ज्वालामय शब्दों एवं

सजीव विचारों से भरे हुए सामूहिक गान एकता उत्पन्न करने में जादू का काम करते हैं।

हवन के लिए कृत्रिम अग्नि प्रज्वलित करने की अपेक्षा सात्विक युवकों को चाहिए कि प्रभात काल अथवा सायंकालीन सूर्य्य बिम्ब के तेज में अपने कलुषित, तुच्छ अहंकार को बलि चढ़ा दें।

Disciple ! up, untiring hasten,
To bathe thy breast in morning red.

उठो उठो हे शिष्य ! सकल आलस तज दीजे।
प्रात लालिमा मध्य उरस्थल मज्जन कीजे॥

(नारायणप्रसाद)

उस तेज के सागर में डुबकी मारो और तेजपुञ्ज बनकर बाहर निकलो, और फिर अपने दिव्य प्रकाश से सम्पूर्ण जगत् को नहला दो। इसी का नाम हवन है।

लोगों में, विशेष करके स्त्रियों और बालकों में (और इसलिए भावी सन्तान में) प्रेम और एकता उत्पन्न करने का एक उत्तम उपाय है नगरकीर्तन अर्थात् गायन और नृत्य करते हुए अथवा सुरुचिपूर्ण तमाशे दिखाते हुए रास्तों से निकलना और निर्भय होकर सत्य की जय-जयकार मनाना।

सत्य के पीछे देश के किसी नेता पर निर्दयतापूर्ण अन्याचार का होना अथवा किसी धर्मवीर का प्राण लिया जाना सारे देश में एकता उत्पन्न करने में रामबाण जैसा काम करता है। पर यह जीते जीते मृत्यु नहीं, वर, स्वार्थहीनता पूर्ण मरणतुल्य जीवन एक ऐसी शक्ति है जो न केवल एक ही राष्ट्र को, वरन् अन्त में समस्त राष्ट्रों को मिला सकता है। यदि एक ही व्यक्ति ईश्वर में वास करने लगे तो सम्पूर्ण राष्ट्र उसके द्वारा एकता प्राप्त कर सकता है।

जहाँ पर यौवनसम्पन्नों को रक्तपात और अग्नि की दीक्षा अर्थात्

कोठरी में तुमने जन्म लिया था उससे बाहर ही क्यों निकलते हो? और घर छोड़कर सड़क पर क्यों आते हो? तुम केवल पानी और मिट्टी के ही बालक नहीं हो, स्वर्ग के भी हो, तुम स्वर्ग के बालक ही नहीं, वरन् साक्षात् स्वर्ग हो, सर्वत्र हो। एक ही स्थान पर अपने को न बाँधो। भारत अपने आप को सारी दुनिया से अलग रखकर एक कोठरी में बन्द नहीं रह सकता। एक समय ऐसा था जब भारतवर्ष एक अकेला देश था और ईरान दूसरा और मिस्र तीसरा। परन्तु आज भाप और बिजली की सहायता से देश-काल के बन्धन बिल्कुल टूट गये हैं और समुद्र रुकावट होने के स्थान में राज-पथ बन गया है। पहले के शहर मानो आजकल की सड़कें हैं, और प्राचीन काल के देश मानो इस समय के शहर बन रहे हैं, जो इस एक छोटे से भूमंडल के टुकड़े पर बसते हैं जिसे संसार कहते हैं। इसी लिए अपने "घर" की कल्पना को विस्तृत करने का यह बड़ा उत्तम समय है। हे प्रकृति और ईश्वर की संतान! सारे देश तुम्हारे हैं और मनुष्य मात्र तुम्हारे भ्राता और भगिनी हैं। जाओ, वहाँ जहाँ तुम अपने काम का सर्वोत्तम उपयोग कर सको। हिन्दू राष्ट्र के गले में लाखों भिखारियों के बोझ डुबा देनेवाले पत्थर का भार बढ़ाने से लाभ! तुम्हें ईश्वर और मानवजाति की शपथ है; जाओ, चले जाओ।

संभव है, कुछ लोगों को भारत की यातना कम करने का प्रश्न केवल राष्ट्रीय हो किन्तु राम के लिए तो यह अन्तर्राष्ट्रीय है। उनके लिए यह केवल देश-भक्ति का प्रश्न हो, परन्तु राम के लिए तो यह मनुष्यमात्र का प्रश्न है। मेरे बच्चे मेरी आँखों के सामने मरें! चाहे वे मुझसे दूर रहें परन्तु जीवित तो रहें। आँखों में प्रेमाश्रु भर कर राम तुमको बाहर जाने का आशीर्वाद देता है, जाओ, प्रणाम!

यहाँ शौक से वापस आ जाना, यदि विदेश में उदर-निर्वाह से अधिक कमाई करने के योग्य हो जाओ, जैसे जापानी युवक पश्चिम के

व्यावहारिक विज्ञान को पश्चिम से अपने देश में लाते हैं, उसी प्रकार तुम भी अपने देश में लौट कर विदेश में सीखी हुई विद्या से अपने देश का कल्याण करो। यदि परदेश में तुम अपने उदर निर्वाह से अधिक कमाई नहीं कर सकते, तो वहीं रहो। और यदि तुम भारतमाता के दुख-भरे वक्षस्थल पर निरुद्योगी जोंक बनकर रहना चाहते हो, तो इससे यही अच्छा है कि तुम भारतवर्ष में पुनः पैर रखने की अपेक्षा अरेबियन समुद्र में एकदम कूद पड़ो और वहीं अरेबियन समुद्र का आतिथ्य ग्रहण करते रहो। घर का प्रेम, और सच्ची देश भक्ति तुमसे ऐसा ही आग्रह करती है।

राम के हृदय में जितना प्यार मनुष्यों के लिए है, उतना ही इतर प्राणियों के लिए; पत्थरों के लिए भी। राम के लिए तो बन्दर उतने ही प्रिय हैं जितने कि देवता। परन्तु तथ्य तो तथ्य ही हैं, और लानत है उन पर जो झूठ बोलता हो। बड़ी कठिनाई से आयर्लैण्ड निवासियों को जॉनबुल (अंग्रेज) के चंगुल से थोड़ा-सा छुटकारा मिला, और वह इसी रीति से मिला कि बिचारे निर्धन आयर्लैण्ड निवासी हर साल हजारों की संख्या में अमरीका में प्रवेश करने लगे।

राम की यह इच्छा भी नहीं कि भारतवर्ष के आलसी मनुष्यों से प्यारे अमेरिका और अन्य देशों को भर दिया जाय। वस्तुस्थिति यह है कि तुम्हारे विदेश-गमन से तुम्हारे स्वास्थ्य में भी वृद्धि होगी। जो वृक्ष एक ही जगह सटकर उगते हैं, वे बहुत ही क्षीण और दुर्बल होते हैं। यदि उन वृक्षों में से एक पेड़ को उखाड़कर किसी अन्य स्थान में लगा दिया जाय, तो वह एक महा प्रचण्ड वृक्ष बन जायेगा। यदि तुम विदेश में जाते हो, तो तुम उस भूमि में फल-फूलकर वहाँ के भूषण बन सकते हो। अमेरिका के वर्तमान धनाढ्य लोगों की स्थिति भी पहले ऐसी ही थी, उनमें से अधिकतर बिचारे गरीबी के कारण यूरोप से आकर वहाँ बसे थे। सब राष्ट्रों का इतिहास पहले ही से यह सिद्ध करता

हैं कि देशान्तर गमन से लोगों की सामाजिक अवस्था सुधर जाती है।

यज्ञ के सम्बन्ध में एक दो बातें कहना है। कभी-कभी यज्ञ और हवन 'त्याग' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। परन्तु त्याग ऐसे पवित्र शब्द को क्रियाहीन लाचारी और निराशाजनक कमजोरी मानना भूल होगा। यह दर्पपूर्ण वैराग्य-वृत्ति भी नहीं है। ईश्वर के पवित्र मंदिर अर्थात् मानवी देह को बिना प्रतिकार चुपचाप क्रूर मांसभक्षक भेड़ियों को सौंप देना त्याग नहीं कहला सकता। अपने आप को अन्याय, अत्याचार और घोर पाप का शिकार बनाने का तुमको क्या अधिकार? यदि कोई स्त्री किसी कामुकता के गुलाम को अपना पवित्र तन अर्पण कर दे, तो क्या यह त्याग कहा जा सकता है? कदापि नहीं। 'त्याग' का अर्थ है अपना सर्वस्व सत्य के समर्पण करना। यह शरीर, यह सारी सम्पत्ति ईश्वर की है। तुम इस पवित्र धरोहर को पाप और अन्याय के हवाले कैसे कर सकते हो। अपने को सत्य से भिन्न और पृथक् समझना और धर्म के नाम पर त्याग करना मानो उस वस्तु को अपनाना है, जो अपनी नहीं है। यह तो अमानत में खयानत है। जो वस्तु अपनी नहीं है, क्या उसका दान करना पाप नहीं है? तुम सत्यरूपी जगमगाते हुए सूर्य्य होकर चमको। सत्य स्वरूप बन जाओ। केवल यही धर्म-संगत 'त्याग' है! ज़रा ठहरो, क्या ऐसे त्याग को त्याग कहना ठीक होगा, यह तो ईश्वरीय वैभव प्राप्त करना है। निस्संदेह ईश्वरत्व और त्याग पर्यायवाची शब्द है। संस्कृति और आचरण उसके बाहरी चिह्न हैं।

जो कर्मकाण्ड इस छोटे से अहंकार से जन्मता है वह वैदिक काल में भी मुक्तिदाता नहीं माना जाता था। मुक्ति तो सदा मात्र ज्ञान ही से प्राप्त हो सकती है। इसलिए आजकल का कोई भी कर्मकाण्ड जिसमें कर्त्तव्यों की भाग-दौड़ हो, जिसमें सभ्य और परिष्कृत रूप में स्वार्थों की गुलामी हो हमें पाप और ताप से मुक्ति नहीं दे सकता। चाहे हम

पृथ्वी की सारी सम्पत्ति जमा कर लें, परन्तु जब तक हम अपने आत्मा को सबकी आत्मा न समझेंगे तब तक शान्ति कदापि नहीं मिल सकती। संसार के सारे परिवर्तनों और सारी परिस्थितियों के भीतर केवल एक ही उद्देश उपस्थित है, और वह है आत्मअनुभव। सचमुच जब तक मनुष्य का जीवन कृत्रिमता, दिखावट और बाहरी रूप-रंग पर टिका रहता है, तब तक प्रत्येक नया परिवर्तन और सुधार केवल एक कूड़े करकट की नवीन तह जैसी रहता है, जिससे आधार तो बिल्कुल दिखायी ही नहीं देता। जब तक अपने सम्पूर्ण स्वरूप का भान करके पूर्ण आरोग्यता अनुभव नहीं की जाती, तब तक सभ्यता का यह सारा दिखावा केवल वेदनापूर्ण देहाभिमान के सूजे हुए घाव को ढाँकनेवाली रेशमी पट्टी जैसा है। यह ज्ञान अर्थात् वेदों का ज्ञान-काण्ड ही सच्चा वेद है। हिन्दू धर्म के षट्दर्शनाचार्यों और बौद्ध-जैन ग्रन्थकारों ने भी इसी को 'श्रुति' का नाम दिया है। प्यारे हिन्दुओ! इसी श्रुति का आश्रय लो। वर्तमान समय की आवश्यकताओं के अनुसार स्मृति और कर्म-काण्ड को बदल डालो। इससे न केवल यह होगा कि तुम अपने हिन्दूपन के अस्तित्व को बनाये रख सकोगे, वरंच अपनी व्याप्ति और वृद्धि करके सम्पूर्ण जगत् के सच्चे गुरु अथवा पथ-प्रदर्शक बन जाओगे। इसी रीति से तुमसे सबको व सबको तुमसे दूर करनेवाली रुकावट दूर हो जायगी और सबको अपने में मिलानेवाली नूतनता सना जायगी। आत्मज्ञान के बिना कार्य्य करनेवाले मनुष्य की अवस्था अँधेरी कोठरी में काम करनेवाले मनुष्य की सी होती है। कभी दीवाल से सिर टकराता है, कभी टेबिल से घुटने फूटते हैं, कभी कुर्सी की ठोकरें और चोटें खानी पड़ती हैं। जो मनुष्य प्रकाश में कार्य्य करता है उसे ऐसा संघर्ष नहीं उठाना पड़ता। ज्ञान-शून्य और ज्ञानवान् मनुष्य के कार्य्य में यही इतना अन्तर है कि ज्ञान-शून्य मनुष्य तो घोड़े की पूछ पकड़कर यात्रा करता है और रास्ते भर लातें खाता है, और ज्ञानी आनन्द और सुगमता

पुनर्जन्म और पारिवारिक बन्धन

१७ दिसंबर, १९०१ को एकेडेमी आफ साइंसेज में दिया हुआ व्याख्यान

महिलाओं और भद्रपुरुषों के रूप में स्वयं में—

भारतवर्ष में एक वार एक वड़ा धनी व्यापारी अपने नगर निवासियों को एक विशाल भोज देनेवाला था। वड़े भोजों में प्रायः रंडियों का एक गोल नाचने-गाने के लिए बुलाया जाता है। यह चाल अव भारतवर्ष में छोड़ी जा रही है। किन्तु राम जिस समय की चर्चा कर रहा है तव इसका वड़ा रिवाज़ था।

एक रंडी ने नाचना-गाना शुरू किया। उसने एक वहुत ही अश्लील, वड़ा भद्दा गीत गाया जिसे कभी कोई पसन्द न करता। तथापि उस विशेष अवसर पर वह गीत सारी महफिल के दिल में चुभ गया। क्या कारण था? आप जानते हैं कि भारतवर्ष में शिक्षित पुरुष और सज्जन युवक ऐसे खराव और भद्दे गीतों को कभी नही पसन्द करते हैं, किन्तु उस अवसर पर उस गीत ने महफिल में उपस्थित लोगों के हृदय में ऐसा घर किया कि वे मोहित हो गये। उस अवसर के अनेक महीनों वाद, अधिकांश पंडित और विद्वान्, जिन्होने वही गीत सुना था, प्रायः सड़क पर जाते हुए धीरे-धीरे मन में वह गीत गुनगुनाते हुए देखे गये। सचमुच सवके सव, जिन्होंने एक बार उसे सुन लिया था, उस गीत को पसन्द और प्यार करने लगे, यहाँ तक कि वह सदा उनके हृदयों में वसने लगा।

प्रश्न यह उठता है कि उसमें मोहनेवाली कौन सी वस्तु थी? जिन लोगों ने गीत सुना था उनमें से किसी से भी पूछ देखो कि वह

कौन सी चीज़ है, जिसने तुमको मोह लिया है, जिसके कारण गीत तुम को इतना प्यारा हो गया है, तो वे सबके सब कहेंगे कि गीत बड़ा ही सुन्दर है, बड़ा ही मीठा है, बहुत ही श्रेष्ठ, अति उन्नायक, अत्युत्तम है। किन्तु वह तो कभी ऐसा था नहीं। यही गीत इस रंडी के मुख से सुनने के पहले उनके लिए अत्यन्त घृणित था, किन्तु अब वे इसे पसन्द करते थे। यहीं भूल है। असली जादू गाने के हाव-भाव और स्वर में था। वेश्या के चेहरे में, चितवन में, और सूरत में था। असली आकर्षण लड़की में था, और उसीका जादू गीत का आकर्षण बन गया था। असली मोहनी गीत में बदल गई थी।

यही दुनिया में होता है। एक शिक्षक आता है, जिसका मुख बड़ा सुन्दर, नेत्र बड़े रसीले और नासिका बड़ी सुडौल है। उसका स्वर अति गंभीर है और वह इधर-उधर झोले देकर हाथ भी खूब नचा सकता है। बस, वह जो कुछ कहता है सब सुन्दर और चित्ताकर्षक बन जाता है। उसका कथन मनोहर तथा सुखकर हो उठता है। यही गलती दुनिया करती है। कोई केवल अकेले सत्य की जाँच नहीं करता। गीत के सम्बन्ध में कोई कुछ भी नहीं सोचता। मजलिस या सभा में बातों को उपस्थित करने का ढंग अथवा अभिनय, बोलने का ढंग, वर्णनशैली, बाहरी चीजों की सजावट—ये सारी बातें शिक्षा और उपदेश को इतना प्यारा, इतना मीठा और चित्ताकर्षक बना देती हैं।

हाल ही में एक बड़े सज्जन मित्र, एक बड़े संभ्रान्त श्रोता एक स्वामी विशेष, स्वामी विवेकानन्द के सम्बन्ध में 'राम' से बातें कर रहे थे। प्रश्न पूछा गया, "क्या उनकी नाक और नेत्र सुन्दर नहीं थे?" तुम व्याख्यानों पर ध्यान देते हो या नाक और आँखों को देखते हो?

पर दुनिया का यही तरीका है। अधिकांश वक्ताओं के बोलने के ढंग में, वर्णनशैली में, उनकी आवाज में चित्ताकर्षण और जादू रहता है, और यही जादू उनकी वक्तृता में आरोपित कर दिया जाता है।

आप तो स्वयं चीजों और बातों को तौलो। वक्ता की देह की अपेक्षा वास्तविक वक्ता पर अधिक ध्यान दो। ये शब्द कटु और कठोर मालूम पड़ते होंगे, किन्तु 'राम' पुरुषों का आदर करनेवाला नहीं है। 'राम' तुम्हारा आदर करता है, तुम्हारा जो सत्य रूप हो। सत्य तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है, और इस अर्थ में 'राम' तुम्हारा आदर करता है। आप चाहे बोलने के ढंग को नापसन्द करें, आप चाहे राम की वर्णन शैली को नापसन्द करें, 'राम' तो महिलाओं और सज्जनों के रूप में अपने आपसे कहता है। राम' आपसे कहता है कि आप सच्चा सुख चाहते हैं, यदि आप सच्ची शान्ति चाहते हैं, तो आपको 'राम' की वक्तृताओं पर ध्यान देना चाहिए, आपको उसके ये व्याख्यान सुनना ही चाहिए। वे तुम्हें सुख देने वाले होंगे। उन को तौलो। उन पर विचार करो, जो शब्द सुनो उन पर चिन्तन करो। जब आप घर जायँ, तब उन्हें याद करने और उन पर अमल करने की कोशिश करें।

'राम' वेदान्तिक धर्म पर व्याख्यान देना चाहता था। किन्तु यहाँ तो अनेक प्रश्न आये हुए हैं। ये प्रश्न उत्तर पाने के लिए 'राम' के पास भेजे गये हैं। ये सारे प्रश्न और वह प्रश्न भी जो कभी किसी को इस पृथ्वी पर सूझ सकता है, इस शहर में दिये जानेवाले व्याख्यानों में हल कर दिये जायँगे। यदि 'राम' से कोई भी प्रश्न न पूछे जाय, तो भी 'राम' वेदान्त के विषय पर बोलता हुआ एक के बाद एक प्रमेय पर विचार करेगा, जिनके द्वारा सब प्रश्नों का उत्तर यथासमय मिल जायगा, किन्तु कुछ लोग अपने प्रश्नों का उत्तर पहले चाहते हैं। आज रात में अथवा एक रात में हम इन सब प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकते। एक दिन में हम एक एक प्रश्न लेंगे, और वही प्रश्न उस दिन के प्रवचन का विषय बन जायगा। आज का विषय सबसे पहले पूछा गया प्रश्न है, अतः हम इसी को उठाते हैं।

किन्तु इसे प्रारम्भ करने से पूर्व इंजील, कुरान, वेद और गीता के

सम्बन्ध में कुछ शब्द कहे जायँगे। लोग इन पुस्तकों को मानते हैं और इन पर आँख मूँदकर विश्वास करते हैं, क्योंकि वे ऐसे मनुष्य अथवा मनुष्यों की कलम से निकली हुई हैं, जिन्हें वे पसन्द करते है। हमारा ईसा का चरित्र बड़ा उत्कृष्ट था, प्रभाव अत्यन्त सुन्दर था। और उनके जो वृत्त बाइबिल गास्पेल में दिये हुए हैं, वे ईसा के ही मुख से निकले हुए बताये जाते हैं, इसलिए हमें उन्हे जरूर मानना चाहिए। कृष्ण भगवान् अत्यन्त श्रेष्ठ थे और उनका चरित्र बड़ा उत्कृष्ट था, और चूँकि गीता उनके मुख से निकली है, अतएव समग्र रूपेण पूर्णतः हमें उसे जरूर स्वीकार करना चाहिए। बुद्ध भगवान् बहुत अच्छे थे, और अमुक पुस्तक उन्होंने कही अथवा कम से कम उनके द्वारा कहा हुई बताई गई है, अतएव हमें अवश्य ही पूरा विश्वास करना उचित है, उनमे सोचने-विचारने का भला क्या स्थान हो सकता है? हमें चिंतन छोड़कर उसी सत्य को इसलिए स्वीकार कर लेना चाहिए कि वह उन महापुरुषों से प्राप्त हुआ है। क्या यह वैसी ही चूक नहीं है, क्या यह वही भूल नहीं है जो कुछ मिनट पहले दर्शाई गई उक्त वेश्या के दर्शकों और श्रोताओं ने की थी? ठीक वही गलती। वक्ता का उपदेश एक चीज़ है और उसका चरित्र तथा उसके जीवन का सौन्दर्य दूसरी चीज़। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि व्यक्ति विशेष अपने समय का सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति होता है, किन्तु उसकी शिक्षायें अपूर्ण रहती हैं। दुनिया की सारी दलबन्दियों का आधार यही भूल, यही भ्रान्ति है। दुनिया के सभी धार्मिक लड़ाई-झगड़े और संग्राम इसी भूल के परिणाम हैं। आप जानते होंगे कि ओलिवर गोल्डस्मिथ एक ऐसा मनुष्य था जिसके सम्बन्ध में डाक्टर जोह्नसन ने कहा था कि उसकी लेखनशैली देवदूतों जैसी थी, वह एम० डी० डाक्टरी की सबसे ऊँची परीक्षा उत्तीर्ण भी था। वही ओलिवर गोल्डस्मिथ भोजन और बातचीत तो ठीक ढंग से करता था, किन्तु अपने भोजन और बातचीत के प्रकार का वर्णन करते-

समय वह जिद किया करता था कि भोजन या बातचीत करते समय मैं नीचे का जबड़ा कभी नहीं हिलाता हूँ। उसकी राय थी कि हमेशा ऊपर का ही जबड़ा चलता है; और नीचे का नहीं। इस विषय पर डाक्टर जोह्नसन से उसका बड़ा वितण्डावाद हुआ था। अपने इस भ्रान्त कथन की पुष्टि में वह बड़ा दुराग्रही थी। आजकल प्रत्येक व्यक्ति जान सकता है कि जब हम बातचीत करते या खाते हैं, तब सदा नीचे का ही जबड़ा चलता है और ऊपरवाला कभी नहीं चलता। हाँ, जब हम पूरा सिर घुमाते हैं तब बेशक ऊपरी जबड़ा चलता है। तथापि उसका पक्ष था कि नीचे का जबडा चलता है, ऊपर का नहीं।

जहाँ तक व्यावहारिक क्रिया का सम्बन्ध था, वह बिलकुल ठीक था, किन्तु स्वयं अपना अनुभव, स्वयं अपनी कार्य-शैली, स्वयं अपना जीवन वह वर्णन नहीं कर सकता था। आप जानते हैं कि किसी काम का करना एक बात है और उस काम की विधि का विज्ञान प्राप्त करना दूसरी बात है। हर एक व्यक्ति अंग्रेजी बोलता है, किन्तु अंग्रेजी व्याकरण थोड़े ही लोग जानते हैं। हर एक व्यक्ति किसी न किसी रूप में तर्क करता है किन्तु तर्कशास्त्र थोड़े ही लोग जानते हैं अथवा आनुमानिक या आनुषङ्गिक तर्क-शास्त्र (Deductive or Inductive Logic) का अध्ययन बहुत थोड़े ही लोग करते हैं। इसी तरह, आदर्श जीवन व्यतीत करना एक बात है और उसके तत्वज्ञान को निरूपण करने की योग्यता, उसके लिए युक्तियाँ उपस्थित करने की योग्यता, दूसरी चीज़ है। लोग यही भूल करते हैं। वे आचार्यों के शारीरिक या व्यक्तिगत आचरण को उनके उपदेशों की सुन्दरता मान बैठते हैं और आचार्यों के गुलाम बन जाते हैं। 'राम' कहता है, सावधान ; सावधान !

हज़रत ईसा के पास पुस्तकें न थीं। तथापि बड़े-बड़े शास्त्री और महामहोपाध्याय बाइबिल में लिखे उपदेशों की व्याख्याओं पर माथापच्ची किया करते हैं। हज़रत मोहम्मद ने उत्तमोत्तम बातें कही हैं। इन लोगों

को दिव्य प्रेरणा कहाँ से प्राप्त हुई थी, यह ज्ञान इन्हें कहाँ से मिला था? इसे इन्होंने स्वयं उस भंडार से प्राप्त किया था जो तुम्हारे भीतर भी है।

महर्षि मनु के पास ऐसी पुस्तकें कहां थीं, किन्तु उन्होंने हिन्दुओं को धर्माचरण पर एक सुन्दर ग्रन्थ प्रदान किया। कविश्रेष्ठ होमर के पास बहुत थोड़ी पुस्तकें थीं, तथापि उसने जो महाकाव्य इलियड एंड ओडीसी (Iliad and Odyssy) आपको दिया, उसका सभी भाषाओं में उल्था हो रहा है। अरस्तू (Aristotle) न तो एम. ए. था और न कोई धर्माचार्य, तथापि एम. ए. के विद्यार्थियों को उसकी पुस्तकें पढ़नी पड़ती हैं।

क्राइस्ट और कृष्ण को दिव्य प्रेरणा (inspiration) कहाँ से मिलती थी? भीतर से। यदि ये लोग भीतर से ज्ञान प्राप्त कर सकते थे, तो क्या आप ऐसा नहीं कर सकते? अवश्य आप भी ऐसा कर सकते हैं। वह मुख्य स्रोत, वह भंडार, वह निर्झर जिससे उन्हें प्रेरणा मिली थी, तुम्हारे अन्दर भी है और ठीक उसी प्रकार। यदि यही बात है, तो उस जल के लिए क्षुधा और पिपासा क्यों जो सहस्त्रों वर्षों पूर्व इस दुनिया में लाया गया था और जो अब बासी हो गया है। तुम भी सीधे अपने अन्दर धस सकते हो और छक कर अमृत पी सकते हो। निर्झर-स्रोत तुम्हारे अन्दर है।

'राम' कहता है—भाइयो और मेरे ही स्वरूप! वे लोग उन दिनों जीवित थे, तुम आज जिन्दा हो, सहस्त्रों वर्षों के रखे हुए सुरक्षित मुर्दे मत बनो। जीवित को मृतक के हाथ में मत सौंपो। दिव्य भोजन, कल्याणकर सुधा तुम्हारे अन्दर है। प्राचीन लोगों की पुस्तकें तब भी उठाओ, पर उन्हें इस विश्वास से मत उठाओ कि उन पुस्तकों में दिये हुये प्रत्येक शब्द के गुलाम बन जाओ। स्वयं सोचो, स्वयं चिन्तन करो। जब तक तुम उन बातों का स्वयं अनुभव नहीं करोगे, तब तक

तुम स्वयं उन बातों को व्यवहार में नहीं लाओगे, जब तक अपने ही जीवन से तुम उनके सत्यासत्य का निर्णय नहीं करोगे, तब तक तुम क्राइस्ट का अभिप्राय नहीं समझ सकते, तब तक तुम नहीं जान सकते कि वेदों का क्या अर्थ है, अथवा गीता का क्या अभिप्राय है, अथवा ईसाई धर्मग्रन्थ बाईबिल का क्या मन्तव्य है। कहावत है कि मिलटन को समझने के लिए मिलटन की जरूरत होती है। क्राइस्ट को समझने के लिए तुम्हें क्राइस्ट बनना पड़ेगा! कृष्ण को हृदयंगम करने के लिए कृष्ण बनना पड़ेगा और बुद्ध को समझने के लिए तुम्हें बुद्ध बनना पड़ेगा। "बनने" का क्या अर्थ है? बुद्ध होने के लिए तुम्हें भारतवर्ष में पैदा होना चाहिए? नहीं, नहीं। क्राइस्ट होने के लिए क्या तुम्हें जूडिया में पैदा होना होगा? नहीं। मोहम्मद होने के लिए क्या तुम्हारा अरब में पैदा होना जरूरी है? नहीं। बुद्ध कैसे बना जा सकता है, ईसा कैसे बना जा सकता है, मोहम्मद कैसे बना जा सकता है? एक छोटी सी कहानी इसका स्पष्टीकरण करेगी।

कोई मनुष्य एक प्रेम-काव्य, एक सुन्दर काव्य जिसमें लैली और मजनू के प्रेम का उपाख्यान अंकित था, पढ़ा करता था। उसे उस काव्य का नायक मजनू इतना भाया कि उसने मजनू बनने का प्रयत्न किया। मजनू बनने के लिए उसने एक ऐसा चित्र लिया, जिस के सम्बन्ध में उससे कहा गया था कि यह उसी काव्य की नायिका (लैली) का चित्र है। उसने बड़े आदर से वह चित्र उठाया, उसे गले लगाया, उसके लिए आँसू गिराये, अपने हृदय से चिपकाया। वह कभी उसे छोड़ना जानता ही न था, किन्तु आप जानते हैं कि कृत्रिम प्रेम बहुत दिनों नहीं टिक सकता। यह तो बनावटी प्रेम था। स्वाभाविक प्रेम की नकल नहीं की जा सकती, और वह प्रेम का स्वाँग भरने की चेष्टा कर रहा था।

एक आदमी उसके पास आया और उससे कहने लगा—भाई! तुम यह क्या कर रहे हो? मजनू बनने का तो यह ढंग नहीं है। यदि

सचमुच तुम मजनूं बनना चाहते हो तो तुम्हें मजनूं की प्रेयसी लैला की जरूरत नहीं, तुममें मजनूं का असली आन्तरिक प्रेम होना चाहिए। प्रेम के उस पात्रों की तुम्हें जरूरत नहीं, तुम्हें तो आवश्यकता है उतने ही तीव्रतम प्रेम की। तुम्हारा अपना स्वतंत्र प्रेमपात्र हो सकता है, तुम अपनी नायिका आप चुन सकते हो, तुम आप अपनी प्यारी चुन सकते हो, किन्तु तुममें भावना और प्रेम की वही तीव्रता होनी चाहिए जो मजनूं में थी। सच्चा मजनूं बनने का एकमात्र उपाय यह है।

इसी तरह 'राम' तुमसे कहता है—यदि तुम ईसा, बुद्ध, मोहम्मद या कृष्ण बनना चाहते हो, तो तुम्हें उन कामों की नकल करने की आवश्यकता नहीं जो उन्होंने किये थे; उनकी आचरण-पद्धति के दास होने की तुम्हें जरूरत नहीं। यह आवश्यक नहीं कि तुम अपनी स्वतंत्रता उनके कृत्यों और कथनों के हाथ बेच डालो, तुम्हें तो उनका चारित्र्य बल उपलब्ध करना होगा, तुम्हें उनकी भावनाओं की अतिशयता प्राप्त करना होगी, तुम्हें उनकी गम्भीर प्रकृति, उनकी सच्ची शक्ति प्राप्त करना होगी। यदि तुम अपने जीवन में वही भाव व्यक्त कर सको तो अभी अभी तुम्हारे समक्ष जो परिस्थिति और वातावरण है वह जरूर बदल जायगा। क्राइस्ट का यदि आज जन्म होता तो वह क्या करता? क्या वह फिर अपने को सूली पर चढ़ाता? नहीं। तुम ईसा बनकर भी जीते रह सकते हो। क्राइस्ट ने अपने विश्वासों के पीछे अपनी देह को सूली पर लटकवाया, और शोपेनहार ने अपने विश्वासों के लिए अपनी देह को जीवित रक्खा। और कभी-कभी अपने विश्वासों के पीछे जीना अपने विश्वासों के लिए मर जाने से अधिक कठिन होता है।

बस, अब इस प्रस्तावना का मर्म यों व्यक्त किया जा सकता है—"हर एक वस्तु का विचार उसके गुण-दोषों के अनुसार करो, आचार्य के चरित्र को, आचार्य के जीवन को, उसके उपदेशों से मत मिलाओ। उसके उपदेश और जीवन को हमें पृथक् पृथक् समझना चाहिए।"

अब पहला प्रश्न यह है: "यदि पुनर्जन्म सत्य है तो क्या इसके द्वारा पारिवारिक्त बन्धन नहीं टूट जाते ? और प्रश्न का एक दूसरा भाग भी है, जो इस जीवन में एक साथ गुथे हुए हैं, क्या वे फिर सूक्ष्म जगत्—परलोक में नहीं मिलेंगे ?"

यह एक सुन्दर प्रश्न है। हम इसके हर एक अंश पर क्रम से विचार करेंगे। "यदि पुनर्जन्म सत्य है, तो क्या यह पारिवारिक बन्धनों का टूट जाना नहीं है ?"

राम केवल इतना जानना चाहता है कि क्या इस संसार में सचमुच पारिवारिक बन्धन हैं ? क्या आप पारिवारिक बन्धनों से बँधे हैं ? एक मनुष्य के एक लड़का हुआ, जो अपने बाप के साथ तभी तक रहता है जब तक नाबालिग है। बच्चा सयाना होता है, अच्छी आमदनी का पद पा जाता है, और अपने बाप से अलग रहना शुरू कर देता है। भला, लड़का के वेतन से बाप क्यों लाभ उठावे ? तुरन्त बन्धन तड़ाक से तोड़ दिया जाता है। लड़के के पास अपना स्वयं एक कुटुम्ब हो जाता है। हो सकता है कि पुत्र भारत, जर्मनी या किसी दूसरे देश में चला जाय और पिता किसी दूसरे देश में। बताओ, पारिवारिक बन्धन कहाँ है ?

हाँ, पारिवारिक बन्धन हैं, किन्तु केवल नाम के। मैं जोह्न एस. (John S) हूँ, मेरा पिता जार्ज एस. (George S) था। नाम, केवल नाम। नाम में क्या धरा है ? आओ, देखें कि क्या सचमुच कोई बन्धन हैं ?

एक लड़का यहाँ पैदा हुआ और एक लड़की कहीं अन्यत्र पैदा हुई। एक अमेरिकन है, दूसरी जर्मन। उनका विवाह होता है। कन्या का पारिवारिक बन्धन किसी एक जगह था, लड़के का पारिवारिक बन्धन किसी दूसरी जगह था, और उनका विवाह हुआ। लो, पुराने बन्धन कहाँ चले गये। अब एक नई गाँठ लग गई, और फिर एक ऐसा समय

आ सकता है जब उनका विवाह विच्छेद हो जाता है। दोनों फिर अलग-अलग ब्याह करते हैं। बन्धन कहाँ हैं? क्या तुम उनको स्थिर, अचल रख सकते हो? भाई और बहन एक ही माता-पिता से पैदा होते हैं और उसी एक घर में अपना बचपन बिताते हैं। वे साथ-साथ बँधे हुए हैं। उनमें एक पारिवारिक ग्रन्थि है। लड़का आस्ट्रेलिया चला जाता है और वहीं अपने नाते जोड़ लेता है। बहन फ्रांस चली जाती है और एक फ्रांसीसी नारी बन जाती है। बन्धन कहां है? अब हमारा प्रश्न है—यदि पुनर्जन्म सत्य है, तो क्या वह पारिवारिक बन्धनों को तोड़नेवाला नहीं? पारिवारिक बन्धन तो इस संसार में भी विद्यमान नहीं, फिर वह (पुनर्जन्म) तोड़ेगा क्या? वह पारिवारिक बंधनों का विच्छेदक नहीं, क्योंकि पारिवारिक ग्रन्थियाँ कहीं हैं ही नहीं।

किन्तु यदि हम मान भी लें कि वस्तुतः पारिवारिक ग्रंथियों का कुछ अस्तित्व है और हम उन्हें इस जीवन में कुछ समय तक बनाये रख सकते हैं, तो भी पुनर्जन्म उन्हें तोड़ता नहीं। इस दूसरे पहलू से विचार करने पर पुनर्जन्म उन बन्धनों का विच्छेदक नहीं होता। मान लीजिये कि आपके बहुत से बच्चे हैं। एक उनमें से मर जाता है। तुम तो पारिवारिक बन्धनों को स्थिर रखना चाहते हो, किन्तु एक छिन जाता है। लो, इस दुनिया से उसका सम्बन्ध टूट जाता है। किन्तु कुछ लोग सोचते हैं, इस त्रुटि का मार्जन होगा, जो धागे टूट गये हैं वे वैकुण्ठ में जुड़ जायँगे। यदि वे किसी दूसरे लोक में जुड़ सकते हैं, और यदि आप चाहते हैं कि फिर उनकी पूर्ति हो जाय, तो इन बन्धनों का जुड़ जाना उचित है, पर यह जरूरी नहीं कि आप एक काल्पनिक वैकुण्ठ के अस्तित्व को मानें, जिसका उल्लेख कहीं किसी भूगोल पुस्तक में नहीं मिलता और न जिसका पता कोई पदार्थ-विज्ञान बता सकता है। यदि आप चाहते हैं कि आपके मित्रों से आपका सम्बन्ध अधिक लम्बे काल तक बना रहे, तो पुनर्जन्म के नियम के अनुसार यह

मृत्यु के बाद आसानी से चल सकता है, क्योंकि उसके अनुसार मनुष्य स्वयं आप अपने भाग्य का विधाता है। आप स्वयं अपने व्यक्तिगत बन्धन और व्यक्तिगत नाते-रिश्ते बनाते हैं। मरते समय यदि आपका किसी पर गहरा प्रेम है तो अपने दूसरे जन्म में आप उस व्यक्ति को किसी दूसरे शरीर में उत्पन्न और अपने से सम्बद्ध पायेंगे। यदि अपने इस वर्तमान जन्म में आप किसी पुरुष विशेष को नहीं देखना चाहते हैं, आप उससे कोई भी सरोकार नहीं रखना चाहते हैं, तो पुनर्जन्म के नियम के अनुसार आपके दूसरे जन्म में आपके साथ उसका कोई वास्ता न रहेगा। पुनर्जन्म का नियम यह नहीं कहता कि मित्र और शत्रु, जिन लोगों के संसर्ग में आप नहीं आना चाहते, अथवा जिन लोगों को आप बड़ी उत्सुकता से अपने साथ रखना चाहते, मृत्यु के बाद वे बलात् आपके ऊपर थोप दिये जायेंगे। वेदांत यह नहीं कहता कि जिनकी उपस्थिति आपको घृणास्पद है, जिनकी उपस्थिति आपको इतनी विरस मालूम होती है, वे बलात् आपके सम्बंधी बनाये जायँगे। यदि किसी नारी को अपने पति द्वारा तलाक दिया गया है और वह उसे फिर कभी नहीं देखना चाहती, तो कर्म के नियम के अनुसार वह पति उसे फिर कभी परेशान नहीं करेगा। जिनको वह देखना चाहती है, जिनसे वह अपना सम्बंध रखना चाहती है, उन्हीं को वह अपने दूसरे जन्म में समझेगी-बूझेगी।

इस विषय से सम्बंध रखनेवाली अनेक भ्रांतियाँ हैं। एक के बाद एक क्रमशः उन सबको यहाँ उठाया जायगा। पहले हम स्वर्ग के विषय को लेंगे, जिसका यूरोप और अमेरिका व्यापक तौर से भ्रांत, उल्टा अर्थ लगाते हैं। क्या हम उसे ईसाई स्वर्ग (Christian heaven) का नाम देंगे? नहीं, हम उसे पादड़ियों का स्वर्ग (Churchian heaven) कहेंगे। किन्तु क्या स्वर्ग की कल्पना में ही अर्थ-विरोध की पुट नहीं है? स्वर्ग शब्द से प्रायः लोग एक ऐसा स्थान

समझते हैं जहाँ वे सबके एक साथ उठें-बैठेंगे और रहेंगे। 'राम' चाहता है कि कृपाकर आप तनिक सोचें, सत्य के लिए आप तनिक विचार करें। जहाँ आप परिच्छिन्न होते हैं, क्या वहाँ कभी पूरा आनन्द हो सकता है? ससीमता में क्या कोई सच्चा सुख हो सकता है? असम्भव, असम्भव। यदि आपके स्वर्ग में आपके प्रतियोगी विद्यमान हों,—वे सब जो अतीत में मर चुके हैं, और जो भविष्य में मरेंगे, और वे सब जो आज भारतवर्ष में, आस्ट्रेलिया में, अमेरिका में, अथवा कहीं और भी मर रहे हैं, तो क्या आपको उससे सुख मिल सकता है? आपने सुना होगा कि सेलकर्क क्या कहता था—

"I am monarch of all I survey,
My right there is none to dispute"

"जहाँ तक जाती है दृष्टि उस सबका सम्राट् हूँ, मैं
मेरे अधिकार का प्रतिवादी कहीं कोई नहीं!

जब कभी आप गाड़ी में बैठते हैं, तो सारी गाड़ी केवल अपने ही लिए आयत्त करने की इच्छा करते हैं। जब दूसरे लोग भीतर आ जाते हैं, तब आप उद्विग्न से हो उठते हैं। आप अपने कमरे में बैठे हैं और कोई आपसे मिलने आता है, झट आप नौकर से कहला देते हैं कि आप घर पर नहीं हैं, बाहर गये हैं।

तुम्हारे पास एक घर और कुछ जायदाद है, और एक दूसरे आदमी के पास भी वैसा ही घर और सम्पत्ति है। अब बाइबिल तथा वेदों के सारे उपदेशों का अनादर करते हुए तुम्हारी इच्छा है कि तुम्हारे पास उस आदमी से अधिक सम्पत्ति हो जाय। तुम चाहते हो कि वह तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी बराबर न हो सके, वह तुम्हारे अधीन हो जाय। क्या यह तथ्य नहीं है कि कुछ ईसाई, असली ईसाई नहीं, किन्तु गलती से ईसाई कहे जानेवाले, यदि उनके साथ एक ही जहाज पर कोई बौद्ध, मुसलमान अथवा हिन्दू यात्री बैठ जाता है तो, वे उसको उप-

स्थिति से घृणा करते हैं ? राम यह बात स्वयं अपने अनुभव से कहता है। वे उसकी उपस्थिति से घृणा करते हैं। उसकी उपस्थिति से मानो उनका सुख मिटने लगता है। अब यदि स्वर्ग में तुम्हें अपने चारों ओर इसी प्रकार के लोग देखना पड़ें, जो तुमसे कहीं अधिक श्रेष्ठ हों, जो ईसामसीह और बुद्ध के समान हों, जिन्हें तुम स्वयं अपने से बहुत बढ़ा मानते हो, महात्माओं के समान हों जो तुम्हारी अपेक्षा अत्यधिक उन्नत अवस्था में हों, तो क्या तुम उस स्थिति में सुखी रह सकोगे ? क्या उस स्थिति में तुम सुख का अनुभव कर सकोगे ? तनिक इस पर विचार करो, एक क्षण भर इस पर चिन्तन करो।

जहाँ कहीं भेद होता है, वहाँ सुख नहीं रह सकता। असम्भव, यह असम्भव है। ऐसी कौन सी चीज़ है जो तुम्हारी प्रफुल्लता को नष्ट कर देती है ? वह है दूसरों का अस्तित्व। प्रत्येक एकदम निराला होना चाहता है। हर एक व्यक्ति एक, अद्वितीय, द्वैतहीन होना चाहता है। अतः तुम्हें उस प्रकार के स्वर्ग से कोई सुख नहीं मिल सकता, जो तुमने भ्रमवश मान रक्खा है, जो इंजील ने तुम्हारे लिए प्रदान किया है।

अच्छा, अब हम इंजील की किस प्रकार ऐसी टीका कर सकते हैं जिससे वह कुछ युक्तिसंगत, उचित प्रतीत हो ? इंजील में हमसे कहा जाता है—हम स्वर्ग में मिलेंगे। हम सबके सब स्वर्ग में मिलेंगे। स्वर्ग में अपने मित्रों से हम मिलेंगे। इसका क्या अर्थ है ? वस्तुतः इसका क्या अभिप्राय है ? इसका ठीक-ठीक अर्थ लगाओ, इसे समझो। क्या तुम नहीं जानते कि उसी इंजील में जिसमें लिखा है कि हम सब स्वर्ग में मिलेंगे यह भी लिखा हुआ है, "स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे अन्दर है।" परमेश्वर का राज्य, सच्चा स्वर्ग तुम्हारे 'अन्दर' है, तुमसे 'बाहर' नहीं। अपने से बाहर स्वर्ग की कल्पना न करो। उसे आकाश में या नक्षत्रों के बीच में न ढूँढो। परमेश्वर पर तनिक दया करो।

यदि वह परमेश्वर मेघों पर रहेगा तो बेचारे गरीब को सर्दी हो जायगी। स्वर्ग तुम्हारे अन्दर है। परमेश्वर तुम्हारे अन्दर है। देखो तो सही!

अपने आपको उस आनन्दमय ईश्वरीय ज्ञान की अवस्था में लाओ, परमेश्वर से पूर्ण अभिन्नता की अवस्था में अपने आपको डाल दो, अथवा यों कहिये कि निर्वाण की दशा में प्रवेश करो, उस ईश्वरीय कल्याणमय दशा को प्राप्त करो और फिर तुम स्वयं स्वर्ग रूप हो, स्वर्ग में आना जाना कैसा! उस स्थिति में तुम सारी दुनिया से एक हो। वहाँ तुम मृतक और जीवित और इस पृथिवी पर जिन लोगों के आविर्भाव की आशा है, उन सबसे अभिन्न हो जाते हो। स्वर्ग तुम्हारे अन्दर है, और इसी प्रकार से हम स्वर्ग में सबसे मिलते हैं। जीवन मुक्त, इसी जीवन में ही मुक्त रहनेवाला मनुष्य सदा स्वर्ग में रहता है, वह सभी मरनेवालों और जीनेवालों से तदात्म रहता है। इतना ही नहीं, भविष्य में इस दुनिया में जिन लोगों के आने की आशा है उन सबसे भी वह एक है। वह ऐसा अनुभव करता और मानता है कि सभी तारागण, सभी ज्ञात प्राणी उसके अपने आत्मा हैं। वह अनुभव और भान करता है कि "मैं सच्चा परमेश्वर हूँ, सच्चा परम पुरुष हूँ, स्वयं तत्त्वस्वरूप हूँ, सारभूत हूँ, अज्ञेय परमेश्वर हूँ। मैं सर्व हूँ, और इस प्रकार 'सर्व' होता हुआ मैं स्वर्ग में हूँ, और स्वर्ग में मैं हर एक व्यक्ति से मिलता हूँ।"

राम अब एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात कहनेवाला है। लोग इस दुनिया में अपनी इच्छित वस्तुओं के लिए लालायित रहते हैं, रात-दिन उन्हें पाना चाहते हैं, किन्तु पाते नहीं। यह क्या बात है? वे उनको क्योंकर नहीं पाते और कैसे उनको पा सकते हैं? लोगों के दिल टूट जाते हैं, प्रेम में हताश होने पर, इच्छा के विफल होने पर, विषय वासनाओं के मारे जाने पर लोग कुम्हलाने लगते हैं और कुम्हलाते-कुम्हलाते एक दिन ऐसा आता है कब उनका सारा जीवन ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। ऐसा क्यों

होता है ? क्योंकि ये लोग स्वर्ग में नहीं मिलते, यही उनकी असफलता का एक मात्र कारण है। यदि आप चाहते हैं कि आपके मित्र आपको मिलें, तो ऐ सांसारिक ऐश्वर्यों के भूखे दुनिया के लोगो! यदि आप चाहते हैं कि संसार के वैभव आपको खोज करें; ऐ अपने प्रेमपात्रों के लिए अपनी शक्तियों को नष्ट करनेवालो, यदि आप चाहते हैं कि आपके मित्र आपको उत्कट प्रेम से प्यार करें, जैसा आप उन्हें करते हैं, तो ऐ उच्च पदों की इच्छा रखनेवाले अकृतकार्य लोगो! राम की शिक्षा का अनुसरण करो, क्योंकि यही एकमात्र असंदिग्ध कुंजी है, यही एक मात्र ताली है जो सब इच्छित पदार्थों के तालों को खोल देती है। इसके लिए तुम्हें स्वर्ग में मिलना होगा और तुम्हें ऐसा प्रबन्ध करना होगा कि हर एक वस्तु स्वयं तुम्हें खोजे। स्वर्ग में मिलने का क्या अर्थ है? प्रेम की भिक्षा में, प्रेम पाने की आकांक्षा में, प्रेम की खोज में, "क्या तुम मुझसे प्रेम करते हो" ऐसे क्षुद्र और अधिकार के भाव में दिव्यता का लेश भी नहीं है। मैं तभी तुम्हारे निकट खिंचता हूँ और तभी तुम्हारी बगल में खड़ा होता हूँ जब तुम मुझे छोड़ देते हो और खो देते हो, जब तुम एक ऐसे स्तर पर खड़े हो जाते हो जो 'मैं और तू' दोनों से ऊँचा है। यदि तुम मुझ पर अपने नयन गाड़कर प्रेम की भीख माँगोगे, तो मैं दूर हटता जाऊंगा। यह नियम है, ऐसा नियम जो अनिवार्य, अविनाशी, निष्ठुर और सर्वथा अटल है। जिस क्षण तुम इच्छा से ऊपर उठते हो, उसी क्षण इच्छा की वस्तु तुम्हें खोजने लगती है, और जब तक तुम माँगने, जाँचने, ढूँढ़ने, उत्कट लालसा की वृत्ति में रहते हो तब तक तुम दुतकारे जाओगे, तुम्हें इच्छित वस्तु न मिलेगी, तुम उसे कदापि नहीं पा सकते। (इच्छित) वस्तु से ऊपर उठो, उसके ऊपर खड़े हो, और वह तुम्हें ढूँढने लगेगी। यही नियम है। कहा गया है—"ढूँढो और पाओगे, खटखटाओ और दरवाजा तुम्हारे लिए खुल जायगा।" इसे समझने में बड़ी भूल की जाती है। "ढूँढोगे तो तुम

कभी न पाओगे, खटखटाओगे, तो तुम्हारे लिए दरवाजा कदापि न खुलेगा"। क्या यह अनुभव यथार्थ नहीं? जब कोई भिक्षुक आपके पास आता है तो उसे देखकर आप को घृणा क्यों होती है? क्या यह ठीक नहीं कि ग़रीब लोग सड़कों पर चलने के ही कारण जेल भेज दिये जाते हैं? राम ने जेल का निरीक्षण किया है और उसे ज्ञात हुआ कि अधिकांश कैदियों का एक मात्र अपराध उनकी ग़रीबी है। लोग उनसे कहते हैं, "अनाथालय (poor house) क्यों नहीं जाते, तुम्हारी उपस्थिति से हमें क्षोभ होता है।" क्या यह सच्ची बात नहीं है?

तुम परमेश्वर के पास जाना चाहते हो; भिखमंगे की भाँति मलिन वस्त्रों के साथ क्या तुम वहां घुसने पाओगे? नहीं, कदापि नहीं। जब तुम्हें किसी राजा के पास जाना होता है तो तुम्हें अपनी सर्वोत्तम पोशाक पहनना पड़ती है। जब तुम परमेश्वर के पास जाओगे तो तुम्हें निष्कामता की पोशाक पहननी पड़ेगी। यदि तुम ईश्वर के दर्शन चाहते हो, स्वर्ग के साम्राज्य का अनुभव चाहते हो, तो तुम्हें इच्छाहीनता की पोशाक पहननी पड़ेगी। तुम्हें आवश्यकता से परे होना पड़ेगा, तुम्हें इच्छा से ऊपर उठना होगा।

"First seek the kingdom of Heaven and everything else will be added unto you." That is the Law.

"पहले स्वर्ग का साम्राज्य ढूँढो और फिर प्रत्येक वस्तु तुम्हें आप आ मिलेगी।" यही नियम है।

धर्म का नियम हमें बतलाता है—"मनुष्य स्वयं अपना भाग्य विधाता है। हम स्वयं अपनी परिस्थिति और वातावरण का निर्माण करते हैं। यहाँ हर एक बच्चा अपने बाप का बाप है। हर एक लड़की अपनी मा की मा है।" ये कथन रहस्यमय जान पड़ते हैं, ये अद्भुत और असंगत जान पड़ते हैं, किन्तु हैं ये पूर्ण सत्य और सत्य के सिवाय इनमें कुछ भी नहीं है।

कर्म के नियम के अनुसार, (राम यहाँ कर्म के नियम की व्याख्या करनेवाला नहीं है, किन्तु उसके केवल उस एक अंश की चर्चा करेगा जिसका सम्बन्ध इस विचाराधीन विषय से है) जब तुम वस्तुओं की इच्छा करते हो, जब तक उनके लिए तुम्हारे हृदय में उत्कट इच्छा और तीव्र लालसा विद्यमान रहती है, वे तुम्हें नहीं दी जातीं किन्तु तीव्र लालसा और उत्कट इच्छा करने के कुछ काल के अनन्तर चाहने, माँगने और इच्छा करने के बाद एक ऐसा समय आता है जब तुम उस इच्छा, उस अभिलाषा से, उस संकल्प से ऊब जाते हो, और अपना मुँह मोड़ लेते हो, एकदम निराश और खिन्न हो जाते हो। बस, तभी वह (इच्छित वस्तु) तुम्हारे पास चली आती है। ही कर्म का नियम है।

यह तो आप जानते ही हैं कि मनुष्य को उन्नति करने के लिए अपना एक पैर ऊपर उठाना और दूसरा नीचे करना पड़ता है। जैसे चलने में एक पैर को ऊपर उठाना और दूसरे को नीचे गिराना होता है। इसी तरह कर्म के नियम की शक्तिमत्ता के अन्तर्गत आपकी इच्छाओं की कृतकार्यता और पूर्ति के लिए उस समय का आना ज़रूरी है कि जब आप उनसे ऊपर उठें, इच्छाओं को त्याग दें। इसी तरह इच्छा से ऊपर उठने पर इच्छा त्याग देने से इच्छा की पूर्ति होती है। कर्म के नियम के व्याख्याता साधारणतः इस प्रश्न के धन-पहलू (positive side) पर अधिक ज़ोर देते हैं और ऋण-पहलू (negative side) की उपेक्षा करते हैं। 'राम' तुमसे कहता है कि तुम्हारी सारी इच्छायें जरूर पूर्ण होंगी, तुम्हारी सारी अभिलाषायें अवश्य सफल होंगी। हरएक वस्तु, जिसकी तुम कामना करते हो, तुम्हारे सामने अवश्यमेव लायी जायगी। किन्तु एक शर्त है। उसकी प्राप्ति से पूर्व तुम्हारा एक ऐसी स्थिति में पहुँचना जरूरी है जिसमें तुम उस इच्छा को त्याग देते हो। और जब तुम इच्छा त्याग दोगे, तभी वह पूरी होगी। 'राम' का खयाल है कि नियम का यह अंश सबकी समझ में नहीं आ

रहा है। इसका कारण यह है कि उन्होंने 'राम' के पिछले व्याख्यान नहीं सुने हैं, जो हरमेटिक ब्रादरहुड के भवन में दिये गये थे। अच्छा, यदि तुम इसे इस समय नहीं समझते हो, तो यह विषय फिर कभी उठाया जायगा।

एक बात और। अधिकांश लोग ऐसे होते हैं जो अपने रिश्ते, अपने नाते बनाये रखना चाहते हैं, वे उन सम्बन्धों को चिरस्थायी करना चाहते हैं। उच्च स्वर से घोषित कर दीजिये, हर जगह ढोल पीट दीजिये कि लौकिक सम्बन्धों, सांसारिक नातों को स्थिर रखने और उन्हें स्थायी बनाने की इच्छा पागलपन का विचार है। यह संभव नहीं, संभव नहीं। यह तो आशा के विरुद्ध आशा करना है। झूठी आशा है। आप अपने सांसारिक सम्बन्धों और लौकिक बन्धनों को स्थायी नहीं बना सकते। कोई भी सांसारिक वस्तु नित्य नहीं बनाई जा सकती। इस सत्य को अपने हृदयों में पैठने दीजिये, इसे अपने अन्तःकरणों में घर करने दीजिये कि लौकिक बन्धनों और सम्बन्धों को स्थायी बनाने की चेष्टा करना पागलपन का विचार है। राम बार-बार इसे दोहराता है कि भाई! तुम ऐसा नहीं कर सकते। इस जगत में कुछ भी स्थायी नहीं है। इस संसार में कोई चीज़ नित्य नहीं है। एक मात्र नित्य वस्तु तुम्हारे भीतर परमेश्वर है, चिरन्तन परमेश्वर है, जो स्वयं तुम हो, चिरन्तन सत्य है जो स्वयं तुम हो। यह देह स्थायी नहीं बनाई जा सकती। यह क्षुद्र शरीर नित्य स्थायी नहीं बनाया जा सकता। यदि तुम अत्यन्त दीर्घ वर्ष भी जीते रहो, तो भी मृत्यु तो आयेगी ही। सूर्य एक दिन मरता है, पृथिवी एक दिन मरती है, तारे मरते हैं। इसका अर्थ है परिवर्तन। इन सबको बदलना पड़ता है, ये नित्य नहीं बनाये जा सकते, जैसे आपका शरीर क्षण-क्षण बदलता रहता है। सात साल के बाद तो यह बिल्कुल नया हो जाता है, पूर्णतः नूतन शरीर बन जाता है।

इसी तरह तुम्हारे संबंध, तुम्हारे बंधन बदलते रहते हैं। ये नित्य

नहीं बनाये जा सकते। यदि तुम्हारे हृदय में इस प्रकार की कोई आसक्ति हो तो इसे तुरन्त त्याग दो।

Rivers may flow uphill,
Wind may blow downward,
Fire may emit cold rays,
The sun may shed darkness,
But this Law of the impermanence of worldly
Relations cannot be frustrated or foiled.

नदियाँ चाहे उलटकर पहाड़ पर चढ़ जायँ,
पवन चाहे नीचे की ओर धस जाय!
अग्नि चाहे ठंढी किरणें उगले, और चाहे सूर्य अन्धकार फैला दे!

किन्तु सांसारिक रिश्तों, लौकिक सम्बन्धों की अनित्यता का नियम तोड़ा नहीं जा सकता, बिगाड़ा नहीं जा सकता। यह अटल नियम है। यदि तुम्हारा विचार कुछ दूसरा है तो तुम गलती पर हो। ठीक नदी-नाव-संयोग का सा हाल है। लकड़ी के लट्ठे नदी की सितह पर तैरते बहते रहते हैं, एक लट्ठा इधर से आता है और दूसरा उधर से। क्षण भर के लिए उनका मिलन होता है, पल भर वे जुड़े रहते हैं और फिर शीघ्र पृथक् हो जाते हैं। एक तेज़ लहर उठकर उनको अलग-अलग कर देती है। संभव है, नदी में बहते हुए ये लट्ठे फिर मिल जायँ, किन्तु फिर भी उनको किसी समय अलग होना पडेगा। ठीक जिस प्रकार तुम्हारे जीवन में, तुम्हारे नित्य-प्रति के काम-काज में, पिता और माता, भाई और बहन एक साथ रहते हैं, किन्तु हर चौबीस घण्टों में वे अलग-अलग हो जाते हैं। दिन में अनेक बार वे चन्द मिनटों के लिए मिलते हैं, उसके बाद पुनः अपने-अपने कमरों या दफ्तरों में चले जाते हैं उसी प्रकार जैसा घर-घर में, हर एक परिवार एक छोटे पैमाने पर मिलन और वियोग होता रहता है, उसी प्रकार एक बड़े पैमाने पर

तुम्हारे सम्बन्धियों, रिश्तेदारों और मित्रों का मिलन और वियोग चलता रहता है। तुम सदा-सर्वदा एक साथ साथ-साथ नहीं रह सकते। यदि यह बात है तो फिर बच्चों का सा खेल क्यों करते हो? जो सदा टिकनेवाला है, जो नित्य और शाश्वत है, फिर क्यों नहीं उसी से सबसे अधिक सम्बन्ध जोड़ते। क्षणिक सम्बन्धों की अपेक्षा जो नित्य है उसी के लिए फिर अधिक चिन्ता क्यों नहीं करते? उसी नित्य स्थायी तत्व का अधिक विचार क्यों नहीं करते? जिससे तुम पृथक् नहीं हो सकते, उसे पाने और अनुभव करने का यत्न क्यों नहीं करते? अरे! उस स्थायी तत्व, वास्तविक नित्यता के बलिदान का यत्न क्यों करते हो? शीघ्र टूटनेवाले अस्थायी नातों के पीछे उस असली तत्व की कुर्बानी क्यों करते हो?

भारतवर्ष में एक नवविवाहिता युवती थी। वह अपनी सास और अपनी ननदों के साथ बैठी हुई मज़ेदार गपशप कर रही थी। इस नई दुलहिन का पति उस समय उपस्थित नहीं था, वह कहीं गया था। इस नई दुलहिन की ननदों ने इसके पति के विरुद्ध कुछ अयोग्य वचन कहे। 'राम' वहाँ मौजूद था। 'राम' ने इस दुलहिन के मुख से ये मधुर शब्द निकलते सुने। उसने कहा, "तुम्हारे लिए, तुम्हारे जिन उन (मेरे पति) के साथ तुम्हें केवल दो-चार दिन रहना है, मैं उनसे, जिसके साथ मुझे अपनी सारी ज़िन्दगी बितानी है, बिगाड़ करके बच्चों की सी नादानी नहीं करूँगी।"

कम से कम उस दुलहिन जैसी, उस महिला जैसी बुद्धि तो रक्खो। ये सब सांसारिक बन्धन, ये लौकिक नाते-रिश्ते सदा न टिके रहेंगे। तुम्हें अपना सारा जीवन उस सच्चे आत्मा के साथ बिताना है, जो नित्य है। तुम उससे सम्बन्ध नहीं तोड़ सकते। इस चंचल वर्तमान के लिए तुम्हें सच्चे आत्मा से नाता नहीं तोड़ना चाहिए। तुम अपने आपको बेचते क्यों हो? तुम ऐसा जीवन क्यों बिताते हो, जो तुम्हें

क्षुद्र बनाता है ? उस अन्तरंग परमेश्वर को क्यों नहीं अनुभव करते, सच्चे आत्मा से क्यों अलग होते हो ? ज़रा बुद्धिमान् बनो !

बुद्ध भगवान् के पास एक आदमी पहुँचा, और उनसे उनके पिता के महल में चलने के लिए कहने लगा। आप जानते हैं कि वही बुद्ध भगवान् जो किसी समय राजा थे, राजकुमार थे, उस समय भिक्षु बन गये थे। उन्होंने सब कुछ त्याग दिया और भिक्षु हो गये। भिक्षु के बाने में वे यत्र-तत्र घूमते फिरते थे, किसी से कुछ माँगते नहीं थे। यदि उनके कमण्डल में, जिसे वे अपने हाथ में लिये रहते थे, कोई कुछ डाल देता तो वाह-वाह, अन्यथा वे शरीर के लिए, इस सांसारिक जीवन के लिए तिनका भर भी परवाह नहीं करते थे। वे अपने पिता के राज्य में गये और भिक्षु के बाने में वहाँ की सड़कों पर घूमने लगे। उन्हें भिक्षु कहना गलती थी। वह फकीरी नहीं, वह तो शहंशाही है। जो कोई वस्तु नहीं खोजता, जो कोई चीज़ नहीं मांगता, यदि वह नष्ट हो जाय तो क्या ? नष्ट हो जाने दो ; क्या परवाह है भोजन या वस्त्र माँगने के लिए वह कभी तुम्हारे पास नहीं आता, कभी नहीं आता।

इसी भेष में वे सड़कों पर घूम रहे थे। उनके पिता ने यह हाल सुना, वह उनके पास आया, और बिलखता-रोता हुआ बोला, "बेटा ! मेरे प्यारे कुमार ! मैंने ऐसा कभी नहीं किया, तुम जो पोशाक पहने हो वह मैंने कभी नहीं पहनी। मैं ही क्यों, मेरे पिता अर्थात् तुम्हारे प्रपिता ने साधुओं का वह भेष कभी नहीं धारण किया, तुम्हारा प्रपितामह भिक्षु बनकर कभी सड़कों पर नहीं घूमे। हम लोग राजा रहे हैं, तुम भी राजघराने के हो, फिर तुम यह फकीरी बाना धारण करके आज हमारे वंश को क्यों ज़लील और लज्जित कर रहे हो ? दया करके ऐसा न करो, दया करके ऐसा न करो। मेरे सम्मान की कुछ तो रक्षा करो।"

मुसकुराते हुए बुद्ध भगवान् ने उत्तर दिया, उन्होंने हंसते हुए कहा, "महाराज ! महाराज ! मैं जिस वंश का हूँ मैं उसे खूब देखता

हूँ, मै अपने पूर्वजन्मों को जानता हूँ, मैं देखता हूँ कि जिस वंश का मैं हूँ वह सदा से भिक्षुओं का वंश रहा है। इसका दृष्टान्त इस तरह दिया जा सकता है।

यह एक सड़क है और यह एक दूसरी सड़क आई है। बुद्ध भगवान् कहते है—महाराज, तुम अपने पूर्वजन्मों से उस राह से चलते आये हो, और मै इस राह से चला आ रहा हूँ, और इस जन्म में हम लोग चौराहे पर मिल गये है। अब मुझे अपनी राह जाना है और तुम्हें अपनी राह जाना है।

बन्धन कहाँ है ? संबंध कहाँ है ? आप कहते हैं कि आपके अपने बाल-बच्चे हैं। आप "राम" को क्षमा करेंगे यदि वह ऐसी बातें कहता है जो इस देश की सभ्यता के द्वारा अशोभनीय समझी जायं। आप कहते है कि ये बच्चे आपके है। आप कहते है कि यह मेरा पुत्र है, मेरे मांस का मांस, मेरे रक्त का रक्त, मेरी हड्डी की हड्डी। अरे, यह तो स्वयं मेरी आत्मा है, यह मेरा पुत्र है, ओह प्यारा दुलारा बेटा ! नन्हा सा मनोहर बच्चा ! और तुम उसे अपने हृदय से चिपटाते हो, तुम अपने गले लगाते हो। किन्तु तनिक अपने तत्वज्ञान की समीक्षा तो करो। यह बच्चा तुम्हारा है और तुम चाहते हो कि यह गाँठ सदा स्थायी बनी रहे। तुम इस संबंध को अनन्त काल तक चलाना चाहते हो। अब कृपया सत्य के नाम पर उत्तर दो कि यदि बच्चा आपका पुत्र है और आप की देह से पैदा होने के कारण आप अपने इस सम्बन्ध को स्थिर रखना चाहते हैं, तो इन जुओं का क्या होगा ? क्या वे तुम्हारी देह से नहीं पैदा हुए है ? क्या वे तुम्हारे पसीने से उत्पन्न नहीं है ? क्या वे तुम्हारे खून के खून नहीं, क्या उनका खून तुम्हारे बदन से नहीं लिया गया है ? क्या उनका समग्र जीवन तुम्हारे जीवन से नहीं बना है ? तनिक उत्तर दीजिये। एक तरह के बच्चे की हत्या करना, एक तरह के बच्चे को नष्ट करना और दूसरी तरह के बच्चे को चूमना-चाटना, उन पर सारे प्रेम

की वर्षा करना कितना अन्याय है, कैसा असंगत है! अपने तर्क को देखो। "राम" का यह अभिप्राय नहीं है कि आप अपने बच्चों के प्रति निष्ठुर हो जायँ और आप उनकी जरूरतों की ओर ध्यान न दें। राम यह बिल्कुल नहीं चाहता। "राम" का उपदेश है कि आपको सम्पूर्ण संसार अपना आत्मा समझना चाहिए, और वैसे ही अपने बच्चों को भी आपको अपनी आत्मा मानना चाहिए। आप राम की बातों का अनर्थ न करना। 'राम' केवल यह कहता है कि "आपके पारिवारिक बन्धन आपकी अपनी उन्नति को न रोकने पायें। अपने पारिवारिक सम्बन्धों को अपने मार्ग में बाधक न बनने दो। वे आपकी अग्रसर गति में बाधा क्यों डालें?"

जब इस शरीर ने, तुम्हारी ही आत्मा ने, जिसे तुम "राम" कहते हो, संन्यास ग्रहण किया था, अपने पारिवारिक संबंध और अपने लौकिक पद का परित्याग किया था, तब उससे कुछ लोगों ने कहा था—"स्वामी जी, स्वामी जी! यह क्या बात है कि आपने अपनी स्त्री, बच्चों, नातेदारों, और उन विद्यार्थियों के हकों का कोई ख़याल तक नहीं किया, जो आपसे सहायता और उपकार की आशा रखते थे; आपने उन लोगों के दावों का बिल्कुल लिहाज नहीं किया?" यह प्रश्न पूछा गया था। "राम" पूछता है—"आपका पड़ौसी कौन है?" तनिक देखिये। जिस मनुष्य ने "राम" से यह प्रश्न किया था वह विश्वविद्यालय में राम का सह-अध्यापक था। राम ने उससे कहा—"आप एक अध्यापक हैं, आप कालेज में दर्शन-शास्त्र पढ़ाते हैं, क्या आप यह कह सकते हैं कि आपकी स्त्री और बच्चों में भी उतनी ही विद्या है जितनी आपमें? क्या आप कह सकते हैं कि आपकी चाची और दादी भी उतनी ही विद्वान् हैं जितने आप? क्या आपके चचेरे भाइयों को भी उतना ही ज्ञान है?" उसने उत्तर दिया—"नहीं, मैं अध्यापक हूँ, उनमें मेरी जितनी विद्या कहाँ?" "राम" ने कहा— अच्छा, यह क्या बात

है कि आप विश्वविद्यालय में तो पढ़ाते हैं, किन्तु आप अपने छोटे बच्चों, अपनी स्त्री, और अपने नौकरों को नहीं पढ़ाते ? आप अपनी दादी और अपने चचेरे भाइयों, अपनी भावजों को क्यों नहीं पढ़ाते ? यह क्या बात है ?" उसने कहा कि वे मेरे व्याख्यान को समझ नहीं सकते। तब उसे निम्नलिखित बातें समझायी गई थीं—

देखो। ये सचमुच तुम्हारे पड़ोसी नहीं हैं। ये नौकर-चाकर, यह दादी, यह स्त्री और ये बाल-बच्चे, और तुम्हारा यह कुत्ता भी तुम्हारा पड़ोसी नहीं है। यद्यपि कुत्ता तुम्हारा रात-दिन का साथी है, कभी तुम्हारा साथ नहीं छोड़ता, अज्ञानी की दृष्टि से वह आपका सबसे बड़ा साथी हो सकता है, किन्तु आप जानते हैं कि कुत्ता, नौकर-चाकर और मूर्ख चाची और दादी आपके पड़ोसी नहीं हो सकते। आप कौन हैं? आप शरीर नहीं हैं, आप शुद्ध आत्मा हैं, किन्तु यूरोपीय दार्शनिक होने के कारण आप इसे स्वीकार नहीं करते। अच्छा, आप मन हैं, अतः आपके पड़ोसी भी वही हैं जो सदा आपके साथ उसी उच्च स्तर में रहते हैं जहाँ आपका मन रहता है। विद्यार्थी, शास्त्री, विद्याविशारद, अपने अध्ययन के कमरे में उन्हीं पुस्तकों पर ध्यान लगाते हैं, उसी विषय का चिन्तन करते हैं, वही चीज़ पढ़ते हैं जो आप पढ़ते हैं। आपका चित्त उन्हीं विषयों में रमता है, जिनमें उनका। अतः वे आपके पड़ोसी हैं। जब आप अपने पढ़ने के कमरे में होते हैं, लोग कहते हैं कि आप विद्यागार (reading room) में हैं। ईमान से कहियेगा कि आप उस समय कमरे में होते हैं या अपने विचारों की तल्लीनता में। आप उस समय पढ़ने के कमरे में नहीं रहते हैं, यद्यपि कुत्ता आपकी गोद में बैठा रहता है, यद्यपि आपके बच्चे कमरे में खेलते रहते हैं, किन्तु वे आपके लिए कुछ भी नहीं होते, आप तो दार्शनिक लोक में विचरते हैं, उतनी ऊँचाई पर आपके पड़ोसी वही विद्यार्थी होते हैं जो अपने अपने घरों में वही विषय पढ़ते हैं। वही आपके पड़ोसी हैं, आपके

अत्यन्त समीपवर्ती पड़ौसी हैं, और इस प्रकार आपकी सहानुभूति-समवेदना अपनी चाची और दादी, कुत्ते अथवा नौकर-चाकरों की अपेक्षा, जो आपके पड़ौसी नहीं हैं, उन विद्यार्थियों तक अधिक पहुँचती रहती है। आपका पड़ौसी तो वह है जो आपकी वृत्ति के अधिक नगीच हो, जो उसी लोक में रहता हो जिसमें आप रहते हैं। आपका पड़ौसी वह नहीं है जो उसी घर में रहता है; चूहे और मक्खियाँ भी उसी घर में रहती हैं, कुत्ते और बिल्लियाँ भी उसी घर में रहती हैं।

अध्यापक महोदय! अब मुझे बताओ, यदि तुम्हारे हाथ की बात हो, तो तुम आगे कहाँ पैदा होगे? क्या आप उसी अपढ़ दादी या चाची के परिवार में पैदा होंगे? नहीं, नहीं। आप तो उस कुटुम्ब में पैदा होंगे जहाँ के लोग आप जैसे चित्तवाले हों, जहाँ के लोग आपके लिए आपके अनुकूल परिस्थिति और वातावरण उत्पन्न कर सकें। आप अवश्यमेव वहीं पैदा होंगे। आप इससे इतर कुटुम्ब में उत्पन्न न होंगे। इस प्रकार आप हर समय अपने पारिवारिक संबंध बदलते रहते हैं। प्रेम का अर्थ क्या है? प्रेम का अर्थ केवल इतना ही है कि आप वही भावना रखते हैं जैसी कोई दूसरा रखता है। इससे अधिक कुछ नहीं। आप एक मनुष्य को प्यार करते हैं; उसका स्वार्थ, उसका आनन्द, उसका कष्ट वही है जो आपका। वही पदार्थ आपको पीड़ा पहुँचाते हैं जिनसे उसको पीड़ा होती है, जो पदार्थ उसे सुखकर लगते हैं, वही आपको भी सुख देते हैं, वही पदार्थ उसे हर्ष देते हैं जो आपको हर्षदायक हैं। यही प्रेम है, आप उसे प्रेम करने लगते हैं। आप किसी मनुष्य को उसकी ख़ातिर प्यार नहीं करते, आप उसमें अपने आपको ही प्यार करते हैं, इससे अधिक कुछ नहीं। आप केवल अपने आपको प्यार कर सकते हैं। तीन मनुष्य हैं, क, ख और ग। यह क है, यह ख है, यह ग है। अथवा इसे हम रासायनिक सूत्र के रूप में भी रख सकते हैं, क और ख में कुछ समान बात है, और क तथा ग में भी कुछ समान बात है,

किन्तु क—ग में क—ख से अधिक समानता है, इसलिए क ख की अपेक्षा ग की ओर अधिक आकृष्ट होगा।

बस, इसी प्रकार आपके पारिवारिक बंधन टूटते रहते हैं, बार-बार टूटते और जुड़ते हैं। इस भांति प्रेम का अर्थ केवल इतना है कि आप अपने आपका कुछ अंश किसी दूसरे मनुष्य में अनुभव करते हैं। जब कोई व्यक्ति पूर्णतया और एक मात्र आपका प्रतिरूप हो जायँ तब आप स्वयं प्रेम रूप बन जायँगे।

इस सिलसिले में हम एक दूसरे विषय पर पहुँचते हैं जिसे 'राम' आज नहीं उठावेगा। यह बड़े महत्व का विषय है। यह विषय है निर्भीकता। भय की सृष्टि कैसे होती है, भय का कारण क्या है? उसमें यह दिखाया जायगा कि यही आसक्ति, यही अपने बन्धनों और सम्बन्धों को सदा के लिए स्थिर रखने की इच्छा, सम्पूर्ण भय की जड़ है। लोग कहते हैं, डरो मत, डरो मत। कितनी अतार्किक बात है! मानो भय तुम्हारे वश में है और वह तुम पर हावी नहीं। भय की एक दवा बताई जायगी, किन्तु "राम" इस विषय को यहीं छोड़ता है, यह फिर कभी उठाया जायगा।

यहाँ एक कविता, जो एक उपनिषद् का भाषान्तर है, पढ़ी जायगी, और फिर बस। यद्यपि अनुवाद सर्वांगपूर्ण नहीं है, फिर भी उससे कुछ आशय निकल ही जायगा।

The untouched Soul, greater than all
  Worlds, (because the worlds by it exist),
Smaller than subtle ties of things minutest,
  Last of ultimatest,

Sits in the very heart of all that lives,
  Resting, it ranges every where! Asleep
It roams the world, unsleeping; How can one

Behold divinest spirit, as it is
Glad beyond joy existing outside life,
Beholding it in bodies, bodiless
Amid impermanency permanent,
Embracing all things, yet in the midst of all
The mind enlightened casts its grief away.

Om ! Om !!

निर्लेप-आत्मा, लोक-लोकान्तरों में सबसे महान् (क्योंकि लोक तो उसी में टिके हैं), छोटी से छोटी चीजों की सूक्ष्म ग्रंथियों से भी सूक्ष्म, सबसे अन्तिम से भी अन्तिम, प्राणियों के हृदय में बैठा है। आराम करता हुआ भी, वह सर्वत्र प्रबन्ध बाँधता है, सोता हुआ भी वह संसार में घूमता है, अनिद्रित ! कैसे कोई उस दिव्य आत्मा को देख सकता है, क्योंकि वह जीवन से परे विद्यमान, हर्ष से भी अधिक प्रफुल्लित है।

शरीरों में देखते हुआ अशरीरी,
अनित्यता के मध्य में नित्य,
सृष्टि का आलिंगन करता हुआ, सब के मध्य में—
उसके द्वारा प्रबुद्ध मन अपने शोक को दूर फेंक देता है, एकदम दूर !

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!



केन्द्र-च्युत न हो

९ जून १९०२ को कैक्सिल हॉल में दिया हुआ व्याख्यान

भोजन करते समय यहाँ के लोगों का ढंग यह है कि वे परस्पर खूब बातचीत करते रहते हैं, इसके विरुद्ध भारत में दूसरी ही चाल है। वहाँ भोजन करते समय कोई बातचीत नहीं की जाती। आपको जानना चाहिए कि वहाँ भोजन करते समय प्रत्येक व्यक्ति को खाने की क्रिया मानों धार्मिक भाव से करनी पड़ती है, उन्हें उसे पवित्र कृत्य बनाना पड़ता है। आपके मुख में जानेवाले भोजन के हर एक ग्रास के साथ आपको इस विचार पर ध्यान देना चाहिए कि यह ग्रास बाहरी जिति का प्रतिनिधि है और इस प्रकार मानों मैं सम्पूर्ण विश्व को अपने भीतर सम्मिलित कर रहा हूं। वहाँ लोग खाते समय निरन्तर इस विचार को अपने चित्त में रखते हैं और साथ ही ॐ जपते रहते हैं, मन से अनुभव करते और समझते जाते हैं कि सम्पूर्ण संसार मुझ में सम्मिलित हो रहा है। ॐ, ॐ ! विश्व मुझ में समाया हुआ है, दुनिया मेरी देह है। इस प्रकार, प्रत्येक ग्रास के साथ वे आध्यात्मिक बल भी प्राप्त करते हैं। वे आध्यात्मिक और शारीरिक भोजन मानों साथ-साथ करते हैं। सारी दुनिया मैं हूँ, वह मेरा ही रुधिर और मांस है। भोजन मानों सम्पूर्ण संसार का प्रतिनिधि है जो मेरा अपना ही रक्त और मांस है, ऐसी पूर्ण एकता है। हिन्दुओं का इस रहस्य से घनिष्ठ परिचय है। इसीलिए ये सब विचार उनके चित्त और भावनाओं में एकत्रित हो जाते हैं। इस प्रकार हृदय की भावुकता (emotional nature) और संकल्प शक्ति (will power) की यहाँ तक पुष्टि हो जाती है कि तुरन्त

आत्मानुभव होता है। देखो, वही आहार-क्रिया जो पाशविक क्रिया मानी जाती है, अन्त में आत्मानुभव की क्रिया वन जाती है।

इसी प्रकार स्नान करते समय आपको सोहम् अथवा ॐ का जाप करना चाहिए। उसका अर्थ है जल। जल ठोस पृथिवी पर समुद्र है। स्नान करते समय विवस्त्र शरीर पानी से एक हो जाता है और शरीर का प्रत्येक रोम-कूप उस जल को ग्रहण करता है। उस समय हम प्रकृति से एक होते हैं, जलवासिनी मीन से अभिन्न होते हैं, मानो विश्व के जल से अपने पुरातन वन्धुत्व का हमें पुनर्लाभ होता है। जिस प्रकार से जल मिट्टी और मैल को देह से हटा देता है, उसी प्रकार आत्मा की धूल भी उसके द्वारा छुट जाती है। सम्पूर्ण विश्व मेरा भोजन बन रहा है, मै पवन भक्षण कर रहा हूँ। इसी तरह वे जीवन की प्रत्येक क्रिया और प्रत्येक कृत्य को, वेदान्त के अनुसार धार्मिक कार्य वना डालते हैं; यहाँ तक कि रोगों को भी वे देवता रूप वना लेते हैं।

भारत में जब किसी घर में चेचक निकलती है तव वे बिल्कुल नहीं घबराते और न कभी कोई चिकित्सा करते हैं, वरन् वे उल्टे खुशी मनाते हैं। क्या यह अद्भुत वात नहीं है? वे अनेक प्रकार से गाते-बजाते हैं, और इस अवसर को अत्यन्त धार्मिक समझते हैं। घर का हर एक व्यक्ति उस परमात्मदेव की पूजा करता है। उनके हृदय में शोक-भरी चिन्ताकुल इच्छाएँ प्रकट नहीं होतीं। जब बच्चा चंगा हो जाता है, वे धन-दान द्वारा और ढोल पीट कर देवता का पूजनोत्सव मनाते हैं, और वड़ा हर्ष और आनन्द प्रकट करते हैं, भगवान् विश्वदेव के प्रति प्रेम और कृतज्ञता प्रकट करते हैं। निस्संदेह आजकल जनता में इन रीतियों की उपेक्षा होती जा रही है। लोग चाहे इन वातों को समझें या न समझें, पर राम इनका यही अर्थ जानता है और इन सब कार्यों का सर्वोत्तम उपयोग करता है।

अव राम आप में से प्रत्येक व्यक्ति से एक वात का अनुरोध करता

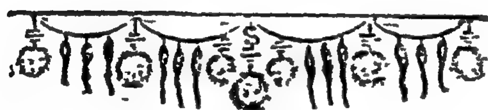
है। सवेरे जब आप उठें, चलें-फिरें अथवा कोई और काम करें, तब अपने विचार सदा निजधाम में रक्खें। सदा अपने आपको केन्द्र में स्थित रक्खें। कदापि केन्द्रच्युत न हों। जिस तरह मछलियाँ जल-राशि में रहती हैं, जिस तरह चिड़ियाँ वायु-राशि में रहती हैं, उसी तरह तुम भी प्रकाश-निधि में रहो। प्रकाश में ही तुम रहो, चलो, फिरो, और अपना अस्तित्व स्थिर रक्खो। जब अँधेरा होता है, तब भी विज्ञान के अनुसार कुछ न कुछ प्रकाश रहता है और आन्तरिक प्रकाश तो सदा विद्यमान रहता है। गाढ़ निद्रा-अवस्था में भी प्रकाश उपस्थित है। एकाग्रता प्राप्ति करने के लिए, आत्मानुभव के उच्चतम शिखर पर चढ़ने के लिए, नौसिखियों को यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे सदा अपनी सत्ता को प्रकाश का संसर्गी मानते रहें।

भौतिक वस्तु के रूप में भारतवासी उस तरह से प्रकाश की पूजा नहीं करते हैं, जैसा कि रोमन कैथोलिक ईसाई अपनी मूर्तियों की पूजा में करते हैं। पर आत्मानुभव के अत्यन्त निश्चित उपाय के रूप में हिन्दू धर्मग्रन्थों में यह बार-बार उपदेश दिया गया है कि उन्हें अपने आपको निरन्तर संसार का प्रकाश रूप समझते हुए पूजा आरम्भ करना चाहिए। जब आप ॐ का जप कर रहे हों तब अनुभव कीजिये कि आप प्रकाश हैं, तेज-पुंज हैं। प्रकाश आप स्वयं हैं। यह भाव जो हिन्दू शास्त्रों में यथार्थ विज्ञान के साथ प्रकट किया गया है, सभी महात्माओं ने इस प्रेरणा का अनुभव किया है। ईसा ने कहा, "मैं संसार का प्रकाश हूं।" मोहम्मद और अन्य महान् पुरुषों ने इसी प्रकार की घोषणा की है। प्रकाश के रूप से आप भी सब वस्तुओं में व्याप्त हैं। इन विचारों को निरन्तर आपको अपने मन में रखना चाहिए, तब इस प्रकार आप सदा परमेश्वर के संसर्ग में रहेंगे। इसी प्रकार हिन्दू का प्रत्येक कार्य धार्मिक स्थिति-बिन्दु पर आत्मा से एकस्वर, अभेद हो जाता है।

तुम्हारी इच्छा व अनिच्छा के बिना ही प्रकृति की सारी शक्तियाँ मनुष्य को आत्मानुभव कराने पर तुली हुई हैं। अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में कोई भेद नहीं पड़ता। जैसे चलने में हम पहले एक पैर उठाते हैं और तब दूसरा नीचे उतारते हैं, उसी तरह सुख और पीड़ा निरन्तर एक दूसरे के बाद आते-जाते रहते हैं। सम्पूर्ण विश्व भर में यही प्रक्रिया काम कर रही है। वे लोग सचमुच सुखी हैं जो सांसारिक सुखों और दुखों से अपने आपको परे रखते हैं। इन दोनों संवेदनाओं से बचना चाहिए, क्योंकि इसी में सच्चा सुख है। यहाँ एक का उतना ही स्वागत है जितना दूसरे का। सांसारिक सुख और दुख उसे विभिन्न नहीं प्रतीत होते, जो मनुष्य उनसे ऊपर उठा होता है; उसे सुख भी उतना ही मान्य है जितना दुख। प्रत्येक सुख के गर्भ में दुख उपस्थित रहता है, और प्रत्येक पीड़ा के गर्भ में सुख विद्यमान है। जो सुखों को ग्रहण करता है, उसे दुख उठाना ज़रूरी होता है। वे अलग-अलग नहीं किये जा सकते। सच्चे आनन्द का मार्ग इस सुख-दुख के चक्र से ऊपर उठना है। सदा सर्वदा अपने आत्मा का उपभोग करो। वही मनुष्य स्वतन्त्र है जो सुखों और दुखों का समभाव से उपयोग कर सकता है। सदा सत्य आत्मा में स्थिर रहो, फिर तुम्हारे आनन्द में कोई बाधा नहीं डाल सकता। जो स्वतन्त्र है, सारी प्रकृति उसकी अभ्यर्थना करती है, सम्पूर्ण विश्व उसके सामने सिर झुकाता है। अनुभव करो कि मै वही हूँ, और आप स्वतन्त्र हैं। आज चाहे आप को यह तथ्य रुचिकर हो या न हो, फिर भी यह कठोर वास्तविकता बनी रहती है, और देर या सवेर सबको इसकी उपलब्धि करनी होगी। सोहम् और ओम् का जाप आपको शुद्ध सत्य में स्थिर रखने के लिए है। पतन का सबसे बड़ा हेतु है कार्य-कारण के चक्र में उतर आना। संसार के दृश्य पदार्थों के कारणों (हेतुओं) पर ज्यों ही कोई सोचना-विचारना आरम्भ करता है, त्योंही वह नीचे गिरता है। वच्चा कारणत्व

(हेतु) से परे रहता है. वह हर एक वस्तु का उपयोग करता है और कारण की परवाह नहीं करता । अतः सदैव प्रफुल्लित और सुखी रहता है । वह कारणत्व, कार्य-कारण चक्र से ऊपर है । कारणत्व के प्रसंग में गिरने के बदले आपको ब्रह्मत्व में ऊपर चढ़ना चाहिए । मैं केवल दृश्य मात्र का साक्षी हूं, कदापि उन नाम-रूपों में फंसा नहीं हूं, सदा उनसे ऊपर हूं । नाम-रूप के व्यापार तो सामंजस्यपूर्ण स्पन्दन मात्र हैं, चक्र की ऊपरी और नीची गतियां हैं, कदमों का ऊपर उठना और नीचे गिरना है । उद्देश्य है आपको कार्य-कारणत्व से ऊपर उठाने का, न कि नीचे गिराने का । हेतुता के मण्डल से ऊपर उठने के लिए आपको निरन्तर प्रयत्न और संघर्ष करना पड़ेगा । अपने ईश्वरत्व, ब्रह्मत्व में निवास करो और तुम स्वाधीन हो, आप ही अपने स्वामी हो । विश्व के विधाता हो !

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!



पाप की समस्या

२८ दिसम्बर १९०२ को दिया हुआ व्याख्यान

वेदान्त की शिक्षाओं के विषय में कुछ आपत्तियाँ राम के सामने लायी गई हैं। उस दिन किसी मनुष्य ने कहा था कि यदि वेदान्त ही हिन्दुओं का तत्वज्ञान है तो भारत के राजनैतिक पतन के कारण समझना सहज हैं। एक दूसरे मनुष्य ने राम से पूछा—यदि हिन्दुओं की शिक्षायें, उनका वेदान्त, उनका तत्वज्ञान, और धर्म दुनिया का सर्वोत्कृष्ट धर्म और तत्वज्ञान होता, तो भारतवर्ष इतना अन्धकार-ग्रस्त और ईसाई देश इतने समृद्ध क्यों होते ?

राम इस समय इन प्रश्नों का उत्तर नहीं देगा, क्योंकि यदि ये प्रश्न उठाये जायँगे तो निश्चित विषय को छोड़ देना पड़ेगा। हाँ, ये प्रश्न बाद के कुछ व्याख्यानों में उठाये जायँगे और इनके उत्तर इस तरह दिये जायँगे कि सब लोगों को आश्चर्य होगा ! जिन लोगों को राम के कुछ व्याख्यान सुनने का अवसर मिला है, राम उनसे केवल यह प्रार्थना करता है कि वे अधीर न हों, तुरन्त नतीजों पर फुदकने का कष्ट न करें। राम चाहता है कि वे तनिक धीरज रक्खें और वक्ता को आद्योपान्त सुन लें।

मुसलमानों की इंजील में, अलकोरान में एक वाक्य इस प्रकार दिया हुआ है, "अनाचार और दुर्गुणों के हवाले (यदि) तुम अपने आपको कर दोगे, मद्यपान और विषयभोगों में (यदि) तुम अपने जीवन को फँसा दोगे, तो तुम स्वयं अपनी सत्यानासी करोगे, तुम स्वयं अपना सत्यानाश-सम्पादन के भागी होगे।" एक मुसलमान सज्जन

शराब के व्यसन में मस्त थे, और इन्द्रियों के सुखों और काम-वासनाओं के भोग में पागल हो रहे थे। एक मुसलमान धर्माचार्य उसके पास पहुँचा और फटकारने लगा। उसने कहा—देख, ऐसा मत कर, क्योंकि तू अपने (मुसलमानों के) पैगम्बर के ही नियत किये हुए नियमों को भंग करनेवाला बनेगा। तब तुरन्त इस शराबी ने अलकोरान के उक्त वचन का पहला भाग पढ़कर सुनाया। उसने कहा—यह देखो, अलकोरान स्वयं कहता है, 'तुम शराब पियो और मौज करो, अपने आपको वामाचार के हवाले कर दो। यह तो अलकोरान का, हमारे धर्मग्रंथ का, हमारी इंजील का यथार्थ वचन है। अलकोरान, हमारा धर्मग्रंथ स्वयं मदिरापान और कामपरायणता की आज्ञा देता है और क्यों न दे ?'

इस पर धर्माचार्य ने कहा, "अरे भाई ! तुम यह क्या बात करते हो ? जरा उस वचन के बाद के भाग को भी तो पढ़ो, 'तुम आप अपना सत्यानाश करोगे' (यही है उस वचन का दूसरा भाग)। दूसरा भाग भी तो पढ़ो। शराबी ने उत्तर दिया—"पृथ्वीतल पर एक भी ऐसा मनुष्य नहीं हो सकता जो सारे अलकोरान पर अमल कर सके। मुझे एक इस हिस्से पर अमल करने दीजिये। यह आशा और कल्पना नहीं की जा सकती कि कोई मनुष्य इंजील की सारी शिक्षाओं पर अमल कर सकता है। कुछ लोग थोड़े से अंश पर ही अमल कर सकते हैं और कुछ एक बहुत बड़े अंश पर; और बस। पर समग्र अलकोरान पर कोई नहीं अमल करता। फिर आप मुझ से समग्र पर अमल करने की आशा क्यों रखते हैं ? मुझे उक्त वचन के केवल प्रथम भाग का ही उपभोग करने दीजिये।"

अतः आप लोगों से राम की केवल इतनी प्रार्थना है कि उस शराबी मुसलमान की तर्क-शैली का उपयोग करना उचित नहीं है। पहले पूरी बात पढ़ना उचित है, तब परिणाम निकालना चाहिए, उससे पहले नहीं।

एक समय राम के पास एक सोने की घड़ी थी। चैन में लगे हुए छोटे-छोटे अलंकारों में एक खिलौना-घड़ी भी थी, जो वास्तव में कुतुबनुमा था। वह खिलौना-घड़ी चलती नहीं थी, किन्तु सुइयों को एक विशेष प्रकार से ठीक करने पर वह एक बजा सकती थी। उसमें सदा एक बजा रहता था, द्वैत के लिए कोई स्थान ही न था। वही एक अद्वितीय तो तुम हो। समय, स्थान और कार्य-कारणत्व अर्थात् देश, काल, वस्तु से ऊपर खड़े हो जाओ। ये सारी चीजें तुम्हारे द्वारा शासित होती हैं, तुम उनके द्वारा नहीं। वे तुम्हारी कल्पना शक्ति के चाकर हैं। दो और तीन—अनेकता मिथ्या है—वह एक, काल के बन्धन से मुक्त है।

प्र०—क्या विवाहित मनुष्य आत्मानुभव की प्राप्ति का साहस कर सकता है?

एक इस सूचना के उत्तर में कि इस प्रश्न पर विचार न किया जाय और इसके बदले में राम आज के निश्चित विषय का ही विवेचन करे। राम कहता है कि हर एक विषय राम का है। इस विषय का भी यदि पूर्ण विवेचन किया जायगा तो भी आपका बड़ा कल्याण होगा। यह विषय भी बड़ा विस्मयजनक है, तुम इसे पूरा सुन लो। इस देश के लोगों को शायद राम की बात विचित्र जान पड़े। राम इसकी परवाह नहीं करता, वह तो केवल तुम्हारा आदर करता है। अस्तु।

उक्त प्रश्न के उत्तर में वेदान्त कहता है, "अवश्य ही औषधि बीमार को दी जाती है, और उसको नहीं जो अच्छा, भला-चंगा है।"

जो दुनिया और उसके झंझटों में सब से अधिक फँसे हुए हैं, उन्हीं को वेदान्त की सबसे अधिक जरूरत है। एक अविवाहित मनुष्य के लिए आत्मानुभव उतना सहज नहीं है जितना विवाहित और पारिवारिक जीवन को यथार्थ रीति से पालन करनेवाले मनुष्य के लिए। हाँ, असावधानी से वह कुछ अनुभव नहीं कर पाता और उलटा नीचे घसीटा जाता है। पुरुष और स्त्री के सच्चे सम्बन्ध की जानकारी न

होने के कारण लोग बड़ी मुसीबत में पड़ जाते हैं। इतने महत्त्वपूर्ण और हृदय के समीपवर्ती विषय का ही निवारण पहले क्यों न किया जाय ? इस प्रश्न का एक पहलू (विवाह की तैयारी) इस समय नहीं उठाया जायगा ? यह एक बड़ा विषय है और बाद के किसी व्याख्यान में इस पर विचार किया जायगा।

राम के विवाह के बाद उसने और उसकी स्त्री ने दो वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन किया। यह तथ्य है, केवल जबानी जमा-खर्च नहीं।

विवाह हानिकारक नहीं है, केवल वह कमज़ोरी हानिकर है जो वैवाहिक जीवन में अधिकार जमा लेती है। वह कमजोरी वस्तुतः हानिकर है। भय, पदार्थ और रूप की लगन, "मैं देह हूं, मेरा साथी देह है," इस कल्पना की पुष्टि करना, अधिकार जमाने की लालसा और याचना का भाव ग्रहण करना पतनकारी बातें हैं। यदि वैवाहिक संबंधों के पालन का यही ढंग हो, तो मनुष्य कभी आत्मानुभव नहीं कर सकता।

पिनेलोपी (Penelope) जितना बुनती, उतना उधेड़ डालती है, तो उसका काम कैसे कभी पूरा हो सकता है ? वह मनुष्य भला कैसे उन्नति कर सकता है जो सदा जितना बुनता है उतना ही बिगाड़ देता है। वेदान्त निर्भयता से कहता है कि तुममें शक्ति का संचार होना चाहिए, तुम्हें सच्ची कोटि के प्रेम से परिपूर्ण रहना चाहिए, जिसे लोगों ने झूठ-मूठ ही प्रेम का नाम दे रक्खा है, उसकी तुच्छता और नीचता से ऊपर उठना चाहिए—एक शब्द में देहाध्यास से ऊपर उठो। यह है बुनने की क्रिया। जब तुम पति या पत्नी में केवल देह देखते हो, तब सब किया-धरा चौपट हो जाता है। तुम कैसे उन्नति कर सकते हो ! किन्तु क्या इससे यह तात्पर्य निकलता है कि लोगों को विवाह ही न करना चाहिए ? नहीं, किन्तु विवाह का उपयोग भिन्न रूप में होना चाहिए। वेदान्त के उपदेश को सुनो। विवाह को अपने उत्कर्ष का साधन बनाओ, तब वह बड़ा सहायक होगा। ठोकर मारनेवाला

पत्थर सीढ़ी का पत्थर बन जायगा। जब विवाह काम-विकार की गुलामी का रूप धारण करता है; तब हर बार की तुष्टि से गुलामी और भी बढ़ जाती है और तुम अधिकाधिक नीचे डूबते जाते हो।

पैगम्बरों ने स्त्रियों के विरुद्ध बहुत कुछ कहा है। वे कहते हैं कि नारी "नरक का द्वार है।" राम इससे सहमत नहीं है। सड़क पर चलते हुए एक मनुष्य (शराब की एक बोतल अपनी जेब में डाले हुए) ने एक पुजारी से जेल की राह पूछी, क्योंकि वह जेल देखना चाहता था, जैसा कि राम ने पिछले सप्ताह किया था। पुजारी के हाथ में छड़ी थी। उसने छड़ी से बोतल छू दी, और कहा—"भाई, यही सबसे नज़दीक का रास्ता है, यह तुम्हें अवश्य सीधा वहीं पहुँचा देगा।" इसी प्रकार नारी के सम्बन्ध में कहा जाता है। दुनिया एक जेल है—आधुनिक विवाह अवश्य तुम्हें वहीं पहुँचाता है। पर यदि नर और नारी एक दूसरे के पतन का कारण होते तो उस परमेश्वर ने जिसने इंजील लिखी है मनुष्यों के हृदयों में नारी को ढूँढ़नेवाली इंजील ही क्यों लिखी? इस ग्रन्थि में एक गूढ़ अर्थ है। यह तो हमारा अज्ञान है, जो इसे नरक का द्वार बना देता है। दोष केवल उसी को देना चाहिए, न कि विवाह के सम्बन्ध को। प्रश्न यह है कि उसे (अज्ञान को) दूर कैसे किया जाय। यह एक शून्य बिन्दु है। यदि शून्य दशमलव बिन्दु (decimal point) की दाहिनी ओर रक्खा जाता है, तो उसका मूल्य घट जाता है, और बाईं ओर तो मूल्य बढ़ जाता है। शून्य स्वयं कोई मूल्य नहीं रखता, अपने सम्बन्ध अथवा स्थिति से ही उसका मूल्य स्थिर होता है। इसी तरह इस मामले में भी आपकी स्थिति वैवाहिक सम्बन्ध का मूल्य स्थिर करती है, उसमें स्वयं कोई मूल्य नहीं, सब कुछ आपके हार्दिक भाव पर निर्भर है।

मनुष्य क्यों अपनी स्त्री में सुख मानता है? इसका अनुसंधान करना चाहिए, अन्यथा हमारी कठिनाई हल नहीं हो सकती।

यही इन्द्रिय-सुख मनुष्यों को गुलाम बनाता है। दौजन का युद्ध हमें इस बात का एक सुन्दर दृष्टान्त देता है। इस के द्वारा एक लड़की चीर बन जाती है और दूसरी नहीं बन पाती। यह कहना मिथ्या है कि यह सुख एकमात्र नारी से प्रकट होता है। हमें इसमें की भूल को समझ लेना चाहिए। उसमें अथवा उसके शरीर में कोई सुख नहीं है।

यदि यह सुख हमारे प्रेमपात्र में केन्द्रित होता, तो स्त्री और पुरुष सदा एक दूसरे के लिए सुख का स्रोत बने रहते? किन्तु हम जानते हैं कि यह बात सत्य नहीं है। जब आप इन्द्रिय-सुख का उपभोग कर चुकते हैं तो उसके बाद आप किस दशा में पहुँचते हैं? सुख की चेतना फिर क्यों नहीं रहती। नपुंसक होने पर क्या वह (नारी) सुख का स्रोत मालूम होती है? जब तुम्हारी अर्द्धांगी रोगी हो जाती है अथवा यदि वह व्यभिचारिणी हो जाती है अथवा जब तुम बीमार होते हो, तब उसमें कोई सुख नहीं रहता। क्योंकि तुम्हारे सामने दो पृथक् सत्ताएँ रहती हैं। जब इस द्वैत का लोप हो जाता है और पूर्ण एकता प्रकट होती है तो न केवल शरीर ही की पूर्ण एकता होती है, किन्तु मन और आत्मा भी एक होती है। फिर एक ऐसी अवस्था आती है जिसका वर्णन नहीं हो सकता। देह देह नहीं रह जाता, संसार संसार नहीं रहता, एकता, स्वर्ग, स्वाधीनता, निर्भयता, द्वैत का नामोनिशान नहीं—अभिन्नता, अद्वैत का प्रादुर्भाव होता है। दुनिया और देह का लोप, पूर्ण विनाश! द्वैत-भ्रम का पता नहीं। न मैं देह हूँ और न वह नारी है; दोनों शरीर, मन, दुनिया से ऊपर! लो, वैकुण्ठ प्राप्त हुआ, लक्ष्य पूर्ण हुआ, न कोई दशा, न कोई अवस्था। वेदान्त कहता है, तब तुम स्वयं शान्ति और परमानन्द होते हो, अपनी सच्ची आत्मा! सचमुच तुम वही हो। आश्चर्यों का आश्चर्य! जब धनात्मक और ऋणात्मक दुनियाँ एक पूर्ण वृत्त बना लेती हैं तब प्रकाश प्रकट होता है जैसे बिजली के लैम्प में। तुम्हारे शरीरों में भिन्न-भिन्न डाइनेमो लगे हुए हैं। बिजली का घेरा पूरा

हो जाता है, ध्रुव एकत्र हो जाते हैं। और जो, पुनः अपनी स्वाभाविक स्थिति प्राप्त होती है। आनन्द, निर्भीकता, उत्पादनशक्ति, साक्षात् ईश्वरत्व, असली यथार्थ आत्मा, और तभी हम कह सकते हैं, "यह मनुष्य ईश्वर का पुत्र है।" जब पति और पत्नी मूलतत्व में लीन हो जाते हैं, सब कुछ उसमें गल जाता है, सारी दुनिया गायब! आत्मा उसे खा जाती है, मानों यहाँ की जातियां, वर्ण और सम्प्रदाय चावल हैं, और मृत्यु मसाला (चटनी)। आत्मा उसे खानेवाला है, क्योंकि आत्मा उसे बनानेवाला है।

दूसरी ओर हम देखते हैं कि वेदान्त के अनुसार अज्ञानी पुरुष, अज्ञानवश बाहरी रूपों, मिथ्या पदार्थों के प्रेम में फँस जाता है, आत्मा का अनादर करता है और केवल बाहरी चिह्नों के विचार में मग्न रहता है।

एक मनुष्य ने जंगल में एक किताब ज़मीन पर पड़ी देखी। बिजली चमकती है। वह मूर्खता से समझता है कि बिजली पुस्तक के कारण चमकी और कोई बात मानता ही नहीं। ये दोनों चीजें उसने एक साथ देखीं और समझने लगा कि एक दूसरे का कारण है। सो मनुष्य को जब एकता में आनन्द की प्राप्ति होती है, जिसका वास्तविक कारण नर या नारी नहीं, किन्तु परमेश्वर की वास्तविकता है, तब वह अपने मन में सोचता है कि सुख उसे अपने साथी से मिला है। वह उसे मानवीय पदार्थों का संसर्गी मानता है।

अब आप इस तथ्य का क्या उपयोग करते है? जब आपका चित्त सांसारिक पदार्थों और विषय-वासनाओं से उपराम हो रहा हो, ठीक उसी समय आप अनुभव करें, खूब सोचें-विचारें कि आनन्द है क्या, तो ज्ञात होगा कि वह एक वृत्ति एक शक्ति, सच्ची आत्मा है जिसके अनुभव के लिए हमें निम्न कोटि के मन से उतरने की आवश्यकता नहीं। वही तो वह दैवी परमतत्व है जिसके सामने हमारा निम्न मन ठहर नहीं सकता, जो सूर्य, चन्द्र, शक्ति का प्राण और अनन्त है,

जो देश-काल-वस्तु से परे है, एक महासागर के समान है, जिसमें सभी पदार्थ लहरों, भँवरों के समान हैं, सभी उस एक आधार-भूत सच्चे मौलिक तत्व के रूपान्तर हैं, जिसमें आपके शरीर भी लहरों जैसे हैं। और इनकी अनेकता का एक मात्र कारण है उनका नाम-रूप। एक बच्चा नदी की ओर देखकर कहने लगा, "आओ, भाई! आओ, भाई! देखो, यह एक लहर आ रही है"। यहाँ जल तो पहले ही से है, किन्तु प्रधानता ऊपरी व्यापार को दी गई है। आओ, मैं तुम्हें एक लहर दिखाऊँगा। ठीक, वही बात यहाँ भी है, एक निरवयव परमेश्वर है! सूर्य, चन्द्र, शरीर, और "मैं तू" रूपी तरंगें मानस-सागर में उमड़ती रहती हैं। इस भाँति मनुष्य स्वयं अनेकता पैदा करता है, नाम-रूप के द्वन्द्व में फँसता है, शरीरों का संघर्ष होता है, तरंगें एक दूसरे से टकराती हैं। सुख केवल पदार्थों के संघर्ष से प्रकट होता है, ऐसा सोचना भी भूल है। वह तो जल-रूप आनन्द-रूप आत्मा की उपस्थिति है, जो लहरों के टूटने पर स्पष्ट हो जाती है। वेदान्ती बच्चे को सिखाना चाहता है कि सोना क्या चीज है और उसे एक अँगूठी दिखाकर कहता है, "यह सुवर्ण है"। बच्चा कहता है "क्या गोलाई सोना है?" नहीं। "क्या रंग सोना है?" नहीं। "चिकनाई?" नहीं, "भार" नहीं! बताओ, उसे सोने की पहचान कैसे कराई जा सकती है? सोने की एक दूसरी वस्तु उसे दिखाओ। अब वह स्वयं सोने की कल्पना उनमें से निकाल लेगा और समझ जायगा कि सोना क्या है। उसके गुणों को यथार्थ रूप से पहचानो और उन्हें जीवन में बरतो।

बीरबल ने बादशाह से पूछा कि अन्धों की संख्या अधिक है या सूझतों की। बहस हुई और निश्चय हुआ कि इसे सिद्ध किया जाय। बादशाह समझता था कि अन्धे कम हैं। अतः प्रमाण के लिए बीरबल कपड़े का एक टुकड़ा लाया, और अपने सिर में लपेटकर उसने पूछा—"यह क्या है?" उत्तर मिला, "पगड़ी।" तब उसने कपड़े को

अपने कन्धों पर रक्खा और लोगों से पूछा, "यह क्या है?" उत्तर मिला। "शाल", तीसरी बार उसने कपड़े को धोती की तरह पहना और उन्होंने कहा—धोती। वीरबल ने तपाक से कहा—अन्धे, सब के सब अन्धे हो। यह तो इनमें से कुछ भी नहीं है, केवल कपड़ा है, नामों और रूपों के नीचे कपड़ा छिप जाता है।

आत्मा के स्वरूप को अनुभव करो। सोने को देखने के लिए उसे तोड़ने की जरूरत नहीं। जब आप नर, नारी, भँवरों, लहरों, कपड़े और सोने की बात करते हैं, तब आप उनके नीचे (आधारभूत) वास्तविकता का विचार नहीं करते।

यह मत कहिये कि विवाह धर्म के विरुद्ध है। देखो और समझो कि सुख का वास्तविक स्वरूप क्या है, वास्तविक आत्मा क्या है। आत्मानुभव के अभिलाषी मनुष्य की हैसियत से, सच्चे आनन्द, वास्तविक तथ्य, मूल तत्व पर विचार करो। जब कभी एकता की चेतना तुम्हारे हृदय से उड़ जाय—तब ध्यान-परायण होकर बन्धन के कारण को निर्मूल कर दो, और वास्तविकता में डूब जाओ।

ॐ—वही मैं हूँ—इसे सिद्ध करो, "क्या वही मेरा असली स्वरूप है? क्या मैं वही हूँ?" यदि मैं वही हूँ, तो दुनिया केवल तरंगमात्र है, मैं क्यों उसके पीछे मारा-मारा फिरूँ। शरीर चेतना की अवस्था में इच्छायें और वासनायें तुमसे, परम आधार से टकराने लगती हैं। अतः संकल्प-शक्ति के द्वारा शरीर-चेतना को मिटा दो। संकल्प-शक्ति के दृढ होने पर नाभिकुण्ड से विचार-धारा ऊपर की ओर उठती है, जो उत्तरोत्तर सबल होकर मस्तिष्क तक पहुँच जाती है। तब विषय-वासना प्राकृतिक ढंग से कम होने लगती है और हरेक बुराई घटती जाती है। क्यों? क्योंकि देदीप्यमान सूर्य के सामने बिजली की रोशनी कैसे चमक सकती है। वह तो केवल अंधेरे में ही चमकती और प्रकाश देती है। धीरे-धीरे उज्ज्वल सूर्य-प्रकाश में आने से इन्द्रियों का सुख

दीपक की भाँति अपनी प्रभा नहीं फैला पाता। गाली देना और निन्दा करना अस्वाभाविक है। तुम इसे तभी कुचल सकते हो जब इससे ऊपर उठो। भाई! साधनों का उपयोग करो और ऊपर उठो।

दुनिया खुद एक अवस्था है। उसमें दूसरे अवस्थों की क्या जरूरत! पापों के मूल कारण से डरो, जो केवल आत्मा को जानने से दूर होता है। विशुद्धता का अनुभव करो और विशुद्ध हो जाओ। इसके सिवा किसी धर्म की शिक्षा देना अस्वाभाविक है।

"Do come or do not come,
You are in me.
Stay near, or stay far, wherever you be;
In me you are, in me you move,
Nay, me is thee,
Dissolve in me, and be the blissful sea.
Giver and not seeker—
Partake of my nature and be happy."

"आओ, चाहे न आओ,
तुम मुझ में हो।
दूर रहो, अथवा निकट रहो, जहाँ कहीं तुम हो,
मुझमें तुम हो, मुझ ही में तुम्हारी गति है।
नहीं, मैं ही तू हूँ,
मुझमें घुल जाओ, और आनन्द-सागर बन जाओ।
दाता हूँ, माँगनेवाला नहीं।
मेरी प्रकृति को माँगो और सुखी बनो।"

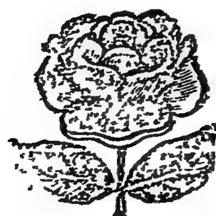
भारत में जो रीति प्रचलित है, वह सर्वसंगत वैज्ञानिक और स्वाभाविक विधि है कि स्त्री सहायक है, न कि पति की बाधक।

आत्मानुभव कर चुकने के बाद जो वर्ष तक और राम [illegible] रहा। उसने अपनी स्त्री को वेदान्त समझाया। वह दुर्व्यसनियों सारी,

और निज-आत्मा में लीन हो जाती। वह अब दण्डवत् प्रणाम करके राम की उपासना करती। यहाँ तक राम की ओर ताकती कि राम का शरीर उसके लिए परमात्मा का रूप बन जाता। वह ॐ का उच्चारण करती और राम में आत्मा का दर्शन करती। अन्त में वह अपने आप में परमेश्वर को देखती और इन विचारों को बाहर भेजने लगती। इस प्रकार पति-पत्नी में से प्रत्येक आपस में परमेश्वर को देखते परस्पर एक दूसरे की सहायता करते हैं, और आत्मानुभव प्राप्त करते हैं। राम ने उसे ऊपर उठाने में सहायता दी। ऐसा कुछ समय तक होता रहा। ऐसी स्थिति में उन्होंने महीनों साथ-साथ बिताये, अधम विचारों का कोई खयाल उनके चित्त में नहीं आया, उन्होंने काम-विकार जीत लिया। परस्पर एक दूसरे का मर्म समझते थे, दोनों मुक्त थे। पति और पत्नी का भाव जाता रहा, फिर कोई बन्धन न था। न वह उसे अपना पति समझती और न वह उसे अपनी स्त्री समझता था।

विचारों की संकीर्णता, और अधिकार-लिप्सा के कारण पारिवारिक क्लेश उत्पन्न होते हैं। उसी हालत में उनके स्वार्थों की मुठभेड़ होती है; और वैवाहिक बाधायें उत्पन्न होती हैं। वेदान्त को समझो और मुक्त हो जाओ। इन नाम-मात्र के बन्धनों के अतिरिक्त और कोई बन्धन नहीं है। हर एक को स्वाधीन होना है, अपने बच्चों को पूर्णतया स्वाधीन बना दो। स्वाधीनता से मनुष्य कभी बिगड़ता नहीं। संपूर्ण संसार स्वर्ग जैसा है, और परमेश्वर को कभी धोखा नहीं दिया जा सकता।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!



कक्षा-प्रश्नों के उत्तर

गोल्डेन गेट हाल, रविवार, २५ जनवरी, १९०२।

महिलाओं और सज्जनों के परिवर्तनशील रूपों में अमर आत्मन्!

प्रश्न—छोटे बच्चे क्यों मरते हैं?

इन प्रश्नों पर विस्तारपूर्वक विचार करने के लिए हमें यथेष्ट समय नहीं है, यहाँ उनके उत्तरों की ओर केवल संकेत मात्र किया जायगा।

उत्तर—किसी सज्जन ने यह एक पुस्तक रची है। इस पुस्तक में अनेक अंग्रेजी संदर्भ हैं, और उनके अतिरिक्त कहीं-कहीं संस्कृत पद्य और संदर्भ भी उद्धृत किये गये हैं। आप जानते हैं कि जिस कलम से अंग्रेजी लिखी जाती है, संस्कृत लिखने के लिए उससे विभिन्न प्रकार की कलम की जरूरत पड़ती है। अतएव जब कोई ग्रन्थकार अंग्रेजी लिखता है, तब वह एक विशेष प्रकार की कलम का प्रयोग करता है, और जब संस्कृत लिखना है तब उसे वह कलम बदलनी पड़ती है, और इस भाँति अन्य भाषाओं के लिखते समय भी कलमों का परिवर्तन होता है। इसी प्रकार जब तुम इस एक भौतिक शरीर में रहते हो, तब तुम अपने इस विशेष शरीर का उसी भाँति व्यवहार करते हो जिस भाँति तुम एक कलम से काम लेते हो। इस शरीर को तुम तभी तक धारण करते हो, उस पर नियंत्रण करना चाहते हो, जब तक इसके द्वारा तुम्हारा काम निकलता है। जब देह इतनी बूढ़ी और रोगी हो जाती है कि फिर उससे तुम्हारा काम नहीं चलता, तब तुम उसे परे फेंक देते हो, तुम उसी तरह दूसरा शरीर धारण कर लेते हो जिस तरह कपड़ों के पुराने होने पर तुम उन्हें बदल कर दूसरे कपड़े पहन लेते हो। इसमें भयंकरता की कोई बात नहीं, यह तो बिलकुल स्वाभाविक है।

बच्चे क्यों मरते हैं ? मान लो, यह एक मनुष्य है जिसे विशेष प्रकार की इच्छायें हैं। एक समय ऐसा आता है जब विशेष प्रकार की वे इच्छायें बदल जाती हैं और दूसरी अथवा विभिन्न प्रकार की इच्छायें उपस्थित होती हैं। उदाहरण के लिए एक मनुष्य अमेरिका के किसी नगर में बहुत काल तक रहता है। किन्तु वहाँ वह ऐसा साहित्य पढ़ता रहता है, ऐसी पुस्तकों का अध्ययन और चिन्तन करता रहता है जिससे उसकी आन्तरिक इच्छायें और वृत्तियाँ बदल जाती हैं। मान लो कि उसका मन पूर्वीय दृश्यों में रँग जाता है, वह दिल से हिन्दू हो जाता है। ऐसी स्थिति में यद्यपि वह अपना अमेरिकन धंधा कुछ दिनों तक, उस समय तक, चलाये जाता है, जब तक उसके आन्तरिक भावों और इच्छाओं और उसकी बाहरी इच्छाओं में पूर्ण पार्थक्य नहीं हो जाता। वस्तुतः अब वह अमेरिकन नहीं रह गया; वह भारत का हो गया है और भारतवर्ष में ही उसे पैदा होना चाहिए। पर इसके साथ ही वह वहां के एक धनी पुरुष के प्रति भी बड़ा अनुरक्त है, उसके साथ रहने का बड़ा इच्छुक है। अब मान लो, सैनफ्रांसिस्को के नगर-पति अथवा किसी अन्य बड़े आदमी से सम्बन्ध स्थापित करनेवाली उसकी यह आकांक्षा इतनी प्रबल नहीं है जितनी भारत में जन्म लेने की। अब इस पहली इच्छा का पूर्ण होना भी आवश्यक है, और इस दूसरी इच्छा का भी। इसका निपटारा कैसे हो ? परिस्थिति ऐसी है जो उसका अपने उस प्यारे से सम्पर्क नहीं होने देती जिससे उसे अत्यन्त स्नेह है। इसलिए जब वह मरता है, तब उसी अमुक नगर-पति (मेयर) के पुत्र के रूप में, अथवा उस बड़े आदमी के पुत्र के रूप में, जिसने उसे आकृष्ट किया था, पैदा होता है। इस व्यक्ति से, जिसने उसे आकृष्ट किया था, तब तक उसका सम्बन्ध बना रहता है, जब तक उसकी इस इच्छा की पूर्ति, अथवा अपने इस प्यारे से लगाव की समाप्ति नहीं हो जाती। इसके बाद अब भारत में उसका पैदा होना निश्चित है, ताकि उसकी दूसरी

संचित इच्छाएँ पूरी हों। यही कारण है बच्चों के बचपन में मरने का।

बस, इस अपने प्यारे व्यक्ति के यहाँ, उस पिता या माता के यहाँ पुत्र रूप से जन्म लेने की इच्छा अंग्रेज़ी अक्षरों में लिखी हुई किसी बड़ी पुस्तक में एक संस्कृत पंक्ति के समान है। इस प्रकार जो बच्चे बचपन में ही मर जाते हैं, वे उन पुस्तकों के उद्धरणों के समान हैं, जिसमें प्रमाणस्वरूप किसी विदेशी भाषा के कुछ उद्धरण दिये जाते हैं।

प्रश्न—कृपया पाप और पुण्य को विभाजन करनेवाली रेखा बताइये।

उत्तर—यह एक सीढ़ी है। यदि तुम सीढ़ी पर ऊपर की ओर चढ़ो, तो यह पुण्य है। यदि तुम सीढ़ी पर नीचे की ओर उतरो, तो यह पाप है।

गणित विद्या में हमें अनेक समपदस्थ स्वयं सिद्धियाँ (co ordinate axioms) मिलती हैं। उन स्वयं-सिद्धियों की स्वतः अपनी कोई धनात्मक अथवा ऋणात्मक स्थिति नहीं होती। वहाँ धनात्मक और ऋणात्मक की सापेक्ष (relative) स्थिति रहती है।

इसी भाँति वेदान्त के अनुसार पाप और पुण्य सापेक्ष शब्द हैं। ऐसा कोई स्थिर बिन्दु नहीं है जहाँ पर तुम यह कह सको कि यहाँ पर पाप समाप्त होता है और यहाँ पर पुण्य आरम्भ होता है।

मान लो, यह एक गणित रेखा है जिसका शीर्ष (vertex) य है। अब इसकी गति यदि एक ओर को होती है तो धन कहलाती है और दूसरी अथवा विपरीत ओर हो तो ऋण कहलाती है। बिन्दु की जो स्थिति ऋण के स्थिति-बिन्दु से धन कही जा सकती है, वही दूसरी ओर से, धन के स्थिति-बिन्दु से ऋण कही जा सकती है। इसी तरह से यदि आप किसी कार्य विशेष से आगे की ओर ऊपर को चढ़ते हैं, यदि आप सत्य के निकट पहुँचते हैं तो वह पुण्य है। यदि किसी के कार्य विशेष से आप सत्य से भटक जाते हैं, तो वह कार्य आपके लिए विष

है। यदि विवाह-सम्बन्ध से आप विश्व-प्रेम के, सार्वभौमिक प्रकाश के, जो सारे संसार में व्याप्त है, निकट पहुँचते हैं, तो विवाह-बन्धन आपके लिए शुभ हैं। यदि विवाह-बन्धन से आप विश्व-प्रेम और विश्व-प्रकाश से भटक रहे हैं, तो ओह! वे तुम्हारे लिए विष हैं, घोर पाप-मय हैं, तुम्हारे लिए वे एकदम अभिशाप रूप हैं।

वेदान्त के अनुसार हर एक व्यक्ति को इन पाशविक इच्छाओं में होकर निकलना पड़ता है। यह बात कर्म के सिद्धान्त में है। प्रत्येक व्यक्ति विकासवाद की पद्धति से उन्नति कर रहा है, विकसित हो रहा है, आगे, और आगे बढ़ता जाता है।

कुछ लोग ऐसे हैं जो अभी-अभी पशु-शरीर से निकले हैं। हाल ही में उन्होंने मानव-शरीर में पैर रक्खा है। उनमें स्वभावतः पाशविक अभिलाषाओं की प्रबलता अनिवार्य है। उन्होंने हाल ही में भेड़ियों, चीतों, कुत्तों, शूकरों इत्यादि के शरीर छोड़े हैं, और अतः उनमें ऐसी इच्छाओं का प्राबल्य ठीक ही है। जड़ता अथवा तमोगुण के नियम (Law of Inertia) के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति सदैव एक सीधी रेखा में ही गति करता है।

यदि जड़ता का यह नियम इस दुनिया से हट जाय, तो सारी दुनिया अस्त-व्यस्त दशा में हो जाय और यदि जड़ता का यह नियम सर्वोपरि हो जाय तो वे लोग जो पशुओं की योनियों से आये हैं सदा पाशविक प्रकृति के ही बने रहें। हमें इन लोगों की निन्दा नहीं करना चाहिए। क्या हम कभी बहती नदियों से घृणा करते हैं? हमें कभी कोई हक नहीं है कि हम उन्हें पापी और घृणित समझें। जिन लोगों को हम पापी और ईर्ष्यालु कहते हैं, उनसे घृणा करने का हमें कोई अधि-कार नहीं है। इन पापी कहे जानेवालों से हमें केवल प्रेम का अधि-कार है। ईसा कहते हैं—(Love the sinner) "पापी से प्रेम करो"। वेदान्त उसका रहस्य स्पष्ट करता है कि उन्हें तुच्छ समझने

का कोई युक्तिसंगत कारण हो नहीं सकता। उनके लिए पापी होना स्वाभाविक है।

अच्छा, तो अपने आप इन्हें अपना लक्ष्य क्या बनाना चाहिए? उन्हें आगे बढ़ना होगा। अकेला जड़ता का कानून ही इस दुनिया का शासक नहीं। यदि वे जीवित रहते हैं, तो उन्हें अवश्यमेव उस जड़ता पर विजय पानी होगी।

इस मौलिक जड़ता (Original Inertia) में जो शक्ति परिवर्तन पैदा करती है उसी के द्वारा उसका माप होता है। जहाँ गति की मौलिक रेखा में कोई दिशा-परिवर्तन नहीं होता है, वहाँ कोई शक्ति नहीं है, कोई जीवन नहीं है। अब यदि ये लोग जीवित कहलाने की इच्छा रखते हैं, तो उन्हें अवश्यमेव जीवित शक्ति प्रकट करना चाहिए, अपने आप को उस जड़ता से बाहर निकालना चाहिए, अपनी प्रारम्भिक शक्ति की दिशा में परिवर्तन करना चाहिए और अपनी इस परिवर्तनकारी शक्ति या धार्मिक शक्ति के द्वारा उन्हें अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति को पूर्णरूपेण बदलना चाहिए। यहाँ एक 'स्वाभाविक' शब्द आया है। इसे खूब समझ लेना चाहिए, क्योंकि यह 'स्वाभाविक' शब्द एक ऐसा शब्द है जो हजारों को, नहीं, नहीं, लाखों को भटकाने का कारण होता है। इसके नाम पर तरह-तरह की बुराइयों और झंझटों को पोषण और प्रोत्साहन दिया जाता है।

कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि 'स्वाभाविक' शब्द से अभिप्राय उन सभी पाशविक इच्छायें और विकारों से है जो चित में उठती रहती है। वे कहते हैं कि फिर हमें अपने मनोविकारों के घोड़े बेलगाम क्यों न छोड़ देने चाहिए, हमें उस बाग को ढीला कर देना चाहिए जो हमारे शुद्ध चरित्र पर नियंत्रण रखती है। हम स्वाधीन हो जायँ, बिल्कुल स्वाधीन। किन्तु ऐसी स्वतंत्रता का सांसारिक, पाशविक जीवन के अतिरिक्त और कोई अर्थ नहीं होता।

यहाँ एक खिलौना-गाड़ी पूरी तेज़ी से दौड़ रही है। खींचनेवाली शक्ति हटा लो, कुछ दूर तक गाड़ी अपने आप दौड़ती रहेगी। क्यों? क्योंकि गाड़ी का उस दिशा में दौड़ना स्वाभाविक है, क्योंकि शक्ति अथवा गाड़ी का वेग उसे उसी दिशा में आगे बढ़ाने में तत्पर था। इसे स्वाभाविक कहते हैं। दूसरे शब्दों में स्वाभाविक का अर्थ है तमोगुण या जड़ता, और जड़ता चाहती है कि गाड़ी उसी ओर दौड़े। जब कोई ढेला आकाश में फेंका जाता है तो जड़ता के ही कारण उसका आगे बढ़ना स्वाभाविक होता है। लड़कों का लट्टू अपने तीव्र वेग से गोलाकार घूमता रहता है। उसके लिए गोलाकार घूमना स्वाभाविक है।

इसी तरह जब तुम पशुओं की योनियों में थे, तब तुम एक विशेष दिशा में दौड़ते रहते थे। पशुओं के शरीरों में लोग पाशविक विकारों को तृप्त करने की ओर दौड़ते थे। यह स्वाभाविक है। स्वभावतः वही पाशविक विकार तुम्हें मिले हुए हैं। निस्संदेह वे कार्य तुम्हारे लिए बिल्कुल उपयुक्त थे, क्योंकि उन्हीं कामों और इच्छाओं से तुम्हारा उत्थान हुआ। वे कार्य और वे इच्छायें तुम्हारे लिए पुण्यरूप थीं, उन्हीं के द्वारा तुम ऊपर उठे, तुम्हें आवश्यक ज्ञान की प्राप्ति हुई।

कुत्ता यदि कुत्तेपन के काम करता है तो उसे कदापि पापी मत कहो। सुअर यदि सुअरपन के काम करता है तो उसे पापी क्यों कहा जाय?

जब तुमने मनुष्य के शरीर में प्रवेश किया, तब तुममें वैसी ही पाशविक इच्छाओं, अभिलाषाओं, आकांक्षाओं का होना स्वाभाविक है, जिनके तुम पशुयोनियों में अभ्यासी रहे हो। इस मनुष्य-शरीर में भी ये कार्य स्वभावतः होते हैं, क्योंकि इनका कारण है जड़ता का नियम। जब तुम पशुयोनि में थे उस समय के स्वाभाविक कार्यों के परिणाम स्वरूप ही इनका जन्म होता है। इस दृष्टि से 'स्वाभाविक' शब्द का अर्थ

तमोगुण के सिवा और कुछ भी नहीं होता है। किन्तु यह जड़ता, यह तमोगुण ऐसा नहीं, जो तुम्हें तुम्हारा सच्चा स्वरूप दिखाये। यह तुम में मृतक तत्वों को प्रकट करती है, यह ईश्वरत्व, ब्रह्मत्व को नहीं प्रकट करती।

मनुष्य तभी वास्तविक मनुष्य बनता है जब वह इस तमोगुण को जीतता और मिटा देता है, जब वह इससे ऊपर उठता है। ये पाशविक वासनायें और विकार जहाँ पशुओं के लिए बिल्कुल स्वाभाविक हैं वहाँ कुछ प्रकार के ऐसे मनुष्यों के लिए भी स्वाभाविक हैं जिन्होंने अभी-अभी नर-देह में पैर रक्खा है। वे चाहे कुछ काल तक इन इच्छाओं का अनुसरण करने में स्वतंत्र रहें, किन्तु कुछ काल के बाद उन्हें इनको छोड़ना होगा, इनसे ऊपर उठना होगा, इनसे आगे बढ़ना ही पड़ेगा।

एक कहानी है जो यहाँ बेमौके न होगी। भारतवर्ष में तुलसीदास नाम के (राम के एक पूर्व पुरुष) एक महात्मा हुए हैं। वे अपनी स्त्री से बहुत प्रेम करते थे। उन्हें अपनी स्त्री पर जैसा प्यार था उतना पहले कभी किसी को अपनी स्त्री पर न हुआ होगा। एक बार उनकी स्त्री को अपने पिता के घर जाना पड़ा। महात्मा जिस गाँव में रहते थे, वह उससे सात-आठ मील की दूरी पर स्थित था। तुलसीदास जी यह स्त्री-वियोग न सह सके, और इसलिए स्त्री की खोज में घर से निकल पड़े। रात को ग्यारह बजे के लगभग उन्होंने अपनी स्त्री के प्रस्थान की बात सुनी और तुरन्त नैराश्य एवं विकलता के मारे पागल की भाँति घर से निकल पड़े। दोनों गाँवों के बीच में एक नदी पड़ती थी, और नदी की तेज धारा के कारण रात के समय उसे पार करना बड़ा कठिन था, और इसके सिवा उस समय कोई सहायक भी वहाँ दृष्टिगोचर न होता था। नदी के तट पर तुलसीदासजी को सहसा एक सड़ी हुई लाश मिल गई। अपने उन्मत्त प्रेम में, अपनी स्त्री के पास पहुँचने की विकलता में, उन्होंने कस कर वही लाश पकड़ ली और उसीके सहारे तैर कर नदी पार हो गये। कुशलतापूर्वक उस पार पहुँच

गये। और वहाँ से दौड़ते-दौड़ते जब वे अपनी स्त्री के घर पहुँचे, तब वहाँ सब द्वार बन्द थे। वे न तो भीतर घुस सके, और न किसी नौकर या घरवाले को जगा सके, क्योंकि वे लोग सब के सब भीतरी कमरों में सो रहे थे। अब वे क्या करते? आपने सुना होगा, लोग कहते हैं, कि राह में नदी हो तो प्रेम तैर कर उसे पार कर जाता है, राह में पहाड़ हों, तो प्रेम चढ़कर उन्हें पार कर जाता है। सो उसी प्रेम के पंखों पर तुलसीदास अपनी स्त्री के पास पहुँचनेवाले थे। अब जब नैराश्य के मारे वे पागल जैसे हो रहे थे, उन्हें मकान से लटकती हुई कोई वस्तु दिखाई पड़ी। वे समझे, रस्सी है। उन्होंने सोचा, देखो, मेरी स्त्री मुझे इतना अधिक प्रेम करती है कि मेरे ऊपर चढ़ने के लिए उसने पहले ही से रस्सी लटका रक्खी है। वे बहुत खुश हुए। यह रस्सी नहीं थी, एक लम्बा साँप था। उन्होंने साँप को पकड़ लिया, पर साँप ने उनको काटा नहीं। और उसके सहारे वे घर के ऊपर की मंजिल पर चढ़ गये, और जिस कमरे में उनकी स्त्री सोई हुई थी, उसमें जा पहुँचे। वह चकित हो उठी और बोली—"तुम यहाँ कैसे? कैसे आश्चर्य की बात है?" वे आनन्द के आँसू बहाते हुए बोले,—"भद्रे! तुम्हीं ने तो मेरे यहाँ का मार्ग इतना सरल कर दिया है। क्या तुमने नदी को पार करने के लिए एक डोंगी तट पर नहीं रख दी थी, और ऊपर चढ़ने के लिए क्या तुमने दीवाल पर रस्सी नहीं लटका रक्खी थी?" वे सचमुच संज्ञाहीन थे, प्रेम ने उन्हें पागल कर दिया था। स्त्री करुणा और हर्ष के आँसू बहाने लगी। उनकी स्त्री विद्वान् थी, दिव्य बुद्धि-सम्पन्ना देवी थी। उसने कहा, "मेरे देवता! हे प्राणप्यारे! इस दिखावटी मुझ में, मेरे इस शरीर में, आपको जितना प्रेम है, यदि उतना ही प्रेम उस दिव्य आत्मा से होता जो इसका आधार और रक्षक है, तो आप ईश्वर हो जाते, और आप संसार के सबसे बड़े महात्मा बन जाते। आप भूमंडल के सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होते, समग्र विश्व आपकी पूजा करता।

स्त्री जब उनके हृदय में ईश्वरत्व की यह भावना भर रही थी, उन्हें सिखा रही थी कि वह परमेश्वर के साथ एक रूप है, तब उसने पूछा—"ऐ प्यारे पति ! क्या तुम मेरे इस शरीर को प्यार करते हो? यह शरीर तो क्षणिक, चंचल है। इसने अभी तुम्हारा घर छोड़ा, और यहाँ इस घर में चला आया। इसी तरह यह देह आजकल में इस लोक को भी छोड़ सकती है। यह देह आज बीमार भी हो सकती है और क्षण भर में इसकी सारी सुन्दरता नष्ट हो सकती है। और देखिये, वह कौन सी चीज़ है जिसने मेरे कपोलों को खिला रक्खा है, मेरे नेत्रों को ज्योति कौन प्रदान कर रहा है, मेरे शरीर में कान्ति कहाँ से आती है, वह कौन सी वस्तु है जो मेरे नयनों के द्वारा चमकती है, मेरी केशों को यह सुनहला रंग किसने प्रदान किया है, मेरी इन्द्रियों और मेरे देह में जीवन और प्रकाश एवं क्रिया किसकी करतूत है? देखो प्यारे! तुम्हें मोहित करने वाला कौन है? वह यह चर्म नहीं, वह मेरा यह शरीर नहीं। कृपया ध्यान दीजिये, कृपया देखिये, वह है कौन? वह तो मेरा सच्चा ईश्वर, आत्मा है जो तुम्हें मोहित, वशीभूत तथा अनुरक्त बना रहा है। वह तो मेरा हृदयस्थ परमेश्वर है, उसके सिवा और कोई नहीं। वही परब्रह्म है, वही सर्वेश्वर मेरे अन्दर है, उसके सिवा और कुछ नहीं। उसी परमेश्वर का अनुभव करो, सर्वत्र उसी परमेश्वर को देखो। क्या वही परमात्मा, वही परमेश्वर नक्षत्रों में विद्यमान नहीं है, क्या वही परमात्मा चन्द्र में होकर सीधे तुम्हारी ओर नहीं देख रहा है?"

लो, उस महात्मा की विषय-वासना उड़ गई। वह भोगलिप्सा और सांसारिक आसक्तियों से ऊपर उठ गया। उस महात्मा ने, जिसे पहले एक स्त्री से ही असाधारण प्रेम था, अब उस परमात्मा को, उस प्यारे स्वरूप को सारे संसार में सर्वत्र अनुभव करने लगा। यहाँ तक कि वह परमेश्वर का एक सच्चा प्रेमी, परमात्मा का मतवाला महात्मा

बन गया। पवित्र प्रेम की शुद्ध अवस्था में रँगा हुआ एक दिन जंगल में विचर रहा था। वहाँ उसकी एक ऐसे आदमी से भेंट हुई जिसके हाथ में कुल्हाड़ी थी और जो सरो के एक सुन्दर वृक्ष को काटने जा रहा था। जब कुल्हाड़ी की चोटें सरो के सुन्दर वृक्ष की जड़ों पर पड़ने लगीं, तब तुलसीदासजी को मूर्च्छा आने लगी। वह झपट कर उस मनुष्य से लिपट गया और बोला—प्यारे! तुम्हारे ये वार मुझे चोट पहुँचाते हैं. मेरे कलेजे को छेद रहे हैं। दया करके ऐसा न करो, ऐसा न करो। उस मनुष्य ने पूछा—महात्मन्! यह क्या बात है? तुलसीदास ने कहा—महाशय! यह सरो, यह सुन्दर पेड़ मेरा प्यारा है, इसमें मुझे अपने सच्चे परमात्मा के दर्शन होते हैं, इसमें मुझे परमेश्वर दिखाई देता है।

अब तो परमेश्वर ही उसकी स्त्री, परमेश्वर ही उसका बच्चा, उसकी माँ, उसकी बहन और उसका सब कुछ हो गया। उसकी सारी शक्ति, उसका सम्पूर्ण प्रेम परमेश्वर के चरणों पर निछावर हो गया। परमात्मा की, सत्य की भेंट हो गया। इसीलिए तुलसीदास ने उस मनुष्य से यों कहा—"मुझे वहाँ अपना प्यारा दिखाई देता है, मैं अपने प्यारे परमेश्वर पर चोटें पड़ते कैसे सह सकता हूँ?"

दूसरे दिन एक मनुष्य एक बारहसिंगे को मारनेवाला था। पवित्रात्मा महात्मा (तुलसीदासजी) उसे लक्ष कर रहे थे। वे झट से वहां पहुँचे और अपने आपको उस मनुष्य के चरणों पर गिरा दिया जो बारहसिंगे का वध करनेवाला था। उस मनुष्य ने पूछा,—महात्मन्! यह क्या बात है? महात्माजी बोले, "अरे! दया करके इस हिरन को बख्श दो, देखो, उन खूबसूरत आँखों से वह मेरा प्यारा देख रहा है। अरे! चाहो तो मेरे इस शरीर को मार डालो, परमेश्वर के नाम पर, उस परमात्मा के नाम पर इस शरीर का बलिदान कर दो, मेरे शरीर का बलिदान कर दो, मैं तो अविनाशी हूँ, किन्तु बख्श दो, मेरे प्यारे को छोड़ दो।"

इस संसार में जो भी सौंदर्य, मनोहरता तुम देखते हो वह सच्चे परमेश्वर के सिवा और कुछ भी नहीं है। वही एक है जो तुम्हारे लिए एक प्यारे के शरीर में प्रकट होता है, वही एक है जो वृक्षों, पहाड़ों और पहाड़ियों के विभिन्न आवरण धारण करता है। इसे अनुभव करो, क्योंकि इसी तरह तुम सभी सांसारिक विकारों और वासनाओं से ऊपर उठ सकते हो। सांसारिक इच्छाओं के आध्यात्मिक प्रयोग का और निष्काम्यतः उनके प्रयोग का यही उत्तम उपाय है। तुम स्वयं आध्यात्मिक पतन के गर्त में फँस रहे हो, स्वयं पापी बन रहे हो। हाँ, यदि तुम इनका उचित उपयोग करके इन्हीं लौकिक लालसाओं को उन्नत करो, इनसे ऊपर उठो तो तुम इन्हीं कामों को पुण्यमय बना सकते हो।

प्रश्न—परिणामवाद के सिद्धान्त (Theory of Evolution) के अनुसार हम "अपूर्ण" से "पूर्ण' होते जाते हैं। क्या इससे आवागमन सिद्ध होता है?

उत्तर—इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि प्रारम्भ ही से इस प्रकार के आवागमन का प्रसारण होता है, जो कदापि पीछे लौटनेवाला नहीं, चाहे कोई मनुष्य कल कितना ही अधिक कुत्ता बनने की चेष्टा क्यों न करे। कल एक मनुष्य का अपने को सुअर बनाने का उदाहरण दिया गया था, किन्तु वह काल्पनिक मसमला था। उस समय केवल एक पहलू लिया गया था। किन्तु किसी बड़े प्रश्न पर विचार करते समय हमें सभी पहलू ग्रहण करना चाहिए।

विद्यार्थियों को गति-विद्या (D namics) पढ़ाते समय हम क्रिया और प्रतिक्रिया (घात-प्रतिघात) के नियम पर ही अकेले विचार करते हैं, जैसे दूसरे नियम उस समय निष्क्रिय हो गये हों। बाद में जब हम गति-विद्या की शिक्षा में आगे बढ़ते हैं तब अन्य सभी नियमों का ध्यान रखना पड़ता है। सो कल के व्याख्यान में समय के अभाव से केवल

एक पहलू पर विचार किया गया था। इस प्रश्न पर विचार करते समय हमें दूसरे पहलू पर भी ध्यान देना पड़ेगा।

एक मनुष्य आज पीछे लौट जाने की चाहे पूरी-पूरी चेष्टा करे, नहीं-नहीं, वह एक निम्नतर पशु की भाँति जीवन बिताने की भरसक चेष्टा करे, वह अपने चित्त से सारी ऊँची और उत्तम भावनायें बाहर निकाल देने की कोशिश करे और यदि उसे अपने आपको बन्दर बनाने में, और अपनी इच्छाओं को एकदम पाशविक बनाने में सफलता मिल जाय, तो दूसरे जन्म में वह अवश्यमेव बन्दर पैदा होगा। किन्तु मनुष्य ऐसा कर नहीं सकता, क्योंकि दूसरी शक्तियाँ भी हैं, जो उसे ऐसा करने से रोकती हैं। वे कौन-सी शक्तियाँ हैं? वे हैं जिन्हें हम दुख-कष्ट और यातना कहते है, वे हमारे रंचमात्र, तनिक भी पीछे लौटने के विरुद्ध, अचूक साधन हैं। ये शक्तियाँ कदापि आपको पीछे न लौटने देंगी। इस प्रकार उन्नति सुरक्षित रहती है। परिणामवाद का प्राण ही उन्नति है, और उन्नति होना अनिवार्य है, और इस प्रकार निरन्तर संघर्ष और निरन्तर संग्राम हमारे लिए आवश्यक हो जाता है।

इसी भाँति, वेदान्त कहता है, तुम्हारे शरीरों में जो संघर्ष चल रहा है, वे दुख और कष्ट, चिन्तायें, व्यथायें, यातनायें, रंज, खटके, क्लेश, क्षोभ और परेशानियाँ, जिनसे तुम्हारे दिल सताये जाते हैं, और जो तुम्हारे चित्त में भयंकर संग्राम खड़ा कर देते हैं, वही तुम्हें आगे बढ़ानेवाले हैं। इन्हीं शक्तियों के द्वारा, हमें विश्वास है, तुम्हें आगे बढ़ना होगा। और यह तो कल दिखाया जा चुका है कि इच्छाओं की प्रतिकूलता और पारस्परिक विरोध ही संग्राम का कारण होता है।

एक ही परिस्थिति विशेष एक मनुष्य के लिए सुखकर और दूसरे के लिए दुःखकर हो सकती है। उदाहरण के लिए यदि किसी मनुष्य का वेतन या आय हजार रुपये महीने से घटकर पाँच सौ रुपये मासिक हो जाय, तो यह पाँच सौ मासिक उसके लिए चिन्ता और क्लेश का कारण

होगा। दूसरी ओर, यदि सौ रुपये मासिक पानेवाला पाँच सौ मासिक वेतन का पद पा जाय, तो वह पद उसके लिए स्वर्ग हो जायगा, उसके सुख, हर्ष और शान्ति का कारण होगा। इस प्रकार कोई भी स्थिति या पद अपने आप बुरा या भला नहीं कहा जा सकता। अपने आपमें सभी स्थितियाँ अनिश्चित हैं, जैसे कोई कर्म अपने आप से पाप या पुण्य नहीं कहा जा सकता। सारी बात इस पर निर्भर है कि आप अपनी परिस्थिति और बाह्य वातावरण से कैसा सम्बन्ध रखते हैं। यदि यह अवस्था उन्नति की है, तो आप प्रसन्न हैं; यदि यह अवस्था उन्नति की नहीं है, तो आप दुःखी और व्यथित हैं। इस प्रकार ये इच्छायें विभिन्न प्रकार की होने के कारण तुम्हारी उन्नति में सहायक बनती हैं। ये इच्छायें न हमारे पूर्वजन्मों से सम्बन्ध रखती हैं और न उनके कारण उत्पन्न ही होती हैं। ये इच्छाये चाहती हैं कि आप जड़ता और तमोगुण को जीतें। जब जड़ता प्रबल हो जाती है और आत्मिक शक्ति दुर्बल पड़ जाती है, तो आप क्लेश भोगते हैं। यही यातना, यही कष्ट मानो एक प्रकार का आध्यात्मिक संकेत है, जिसके द्वारा तुम ठीक राह पर आ जाते हो, तुम्हें अपनी उच्चतर प्रकृति की याद आ जाती है, और तुम्हारे आध्यात्मिक रोग का निवारण होता है। व्यथा, यातना और कष्ट ही इस संसार में कल्याण रूप हैं। यदि संसार में व्यथा और यातना न होती तो बिलकुल उन्नति न होती। इसलिए वेदान्त कहता है कि यातना के इस नियम के कारण आपके पतन की कभी कोई आशंका नहीं है। हरगिज मत सोचो कि तुम कभी भी नीचे घसीटे जाओगे, अथवा कभी नीचे ढकेल दिये जाओगे!

यदि तुम किसी को अपने से बहुत आगे बढ़ा हुआ देखते हो, तो उससे डाह न करो, क्योंकि तुम स्वयं एक दिन वहां पहुँच जाओगे। और यदि तुम किसी को अपने आपसे नीचे, बहुत नीचे देखते हो, तो उसे तुच्छ मत समझो, क्योंकि एक दिन वह भी वहाँ पर होगा जहाँ

तुम आज हो। दस जन्म पहले तुम जहाँ पर थे कुछ लोग आज वहाँ खड़े हैं, और कुछ लोग आज वहाँ हैं जहाँ पर तुम आज से दस जन्मों में पहुँचोगे! इसलिए तुम्हें सब पर सार्वभौम प्रेम करना चाहिए। कभी किसी वस्तु या व्यक्ति को तुच्छ न समझना चाहिए। जो तुमसे अधिक ऊँचाई पर हैं, उनसे डाह मत करो, क्योंकि यथासमय तुम वहाँ पहुँच जाओगे।

प्रश्न—यदि व्यथा और दुख के नियम के कारण हम उन्नति करने को बाध्य होते हैं, तो क्या वंशपरम्परा के नियम में कोई सच्चाई है? बच्चे अपने पिता-माताओं के विशेष रोगों से क्लेश पाते हैं। इन बातों की संगति कैसे होगी?

उत्तर—आप जानते हैं कि कल यह बताया गया था कि हम आप ही अपने माता-पिताओं का निर्माण करनेवाले हैं। यहाँ एक ऐसा मनुष्य है जिसे एक विशेष प्रकार का रोग है। हम माने लेते हैं कि रोग उतना ही बुरा है जितना लोग कहते हैं; यद्यपि वास्तव में 'बुरा' शब्द का कोई निश्चित पर्याय नहीं, क्योंकि प्रत्येक वस्तु परमेश्वर रूप है—किन्तु यहाँ एक मनुष्य है जिसके रोग का सूत्रपात्र कामुकता, भोग-लिप्सा, निम्न वासना और पाशविक मनोविकारों से हुआ है। अब जब यह मनुष्य मरेगा तब एक विशेष प्रकार का क्षेत्र और वातावरण जिससे उसकी इन इच्छाओं की पूर्ति होगी, अपने लिए पसन्द करेगा। दूसरे शब्दों में एक प्रकार से उसकी ये इच्छायें अपने फल से पहले प्रकट हो रही हैं।

आध्यात्मिक सम्बन्ध के नियम से वह ऐसे लोगों के पास खिंचता है, ऐसे लोगों में पैदा होता है, वह अब ऐसी देह में, ऐसे मस्तिष्क में, ऐसे स्वास्थ्य में प्रवेश करता है, जो उसकी इन विशेष इच्छाओं की पूर्ति के उपयुक्त होती है। इस भाँति वह ऐसे लोगों के पास पहुँच जाता है। यहाँ वंशपरम्परा का नियम भी (Law of Heredity) ठीक उतरता

है, क्योंकि उसके अनुसार उसे एक विशेष प्रकार की शारीरिक प्रवृत्ति मिलती है, जिसके द्वारा वह अपनी कामनाओं को चरितार्थ कर सकता है। एक दूसरा उदाहरण लो। मान लो, कोई मनुष्य कहता है, "मैं एक पुस्तक प्रकाशित करना चाहता हूँ।" अब, यदि वह मनुष्य पुस्तक प्रकाशित करना चाहता है, तो उसे किसी छापेखाने में जाना चाहिए, क्योंकि वहाँ उसे ऐसी मशीन और सामान इत्यादि मिलेगा और वहाँ छापेखाने वाले उसका काम करेंगे। यहाँ वंशपरम्परा का नियम छापेखाने के सदृश है, जहाँ मनुष्यों को अपनी इच्छा के अनुकूल सामान तैयार मिल जाता है। मान लो, एक मनुष्य हत्या करना चाहता है और दूसरा उसे भुजाली दे देता है। अब यदि भुजाली बनानेवाला हत्या का इरादा रखनेवाले को भुजाली देता है, जिससे वह शत्रु पर आघात करता है तो हत्या का दोष भुजाली बनानेवाले के सिर नहीं मढ़ा जा सकता। हत्या का पाप तो उसी के सिर पर रहेगा जो अपने हाथ से छुरा भोंकेगा। उसकी इच्छा की पूर्ति में उसके सहायक कैसे दोषी हो सकते हैं ?

माता-पिता ने हमें हमारा यह शरीर दिया है, क्योंकि हमने ऐसा ही चाहा था। जो देह हमने माँगी थी वही हमें मिली, चाहे वह रोगग्रस्त भले ही हो। अब प्रश्न यह होता है कि यदि मनुष्य को अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए शरीर पाना आवश्यक होता है, तो उसे रोगी शरीर तो नहीं मिलना चाहिए। अच्छा, तुम यह जानते हो कि इच्छाओं का पूर्ण होना ज़रूरी होता है और साथ ही हमें उनसे ऊपर उठना पड़ता है; यह अटल नियम है। मनुष्य स्वयं अपना भाग्य-विधाता है। यह तुम्हारी अपनी पसन्द (रुचि) की बात है कि तुम अपनी निम्न इच्छाओं को त्याग दो और उच्च इच्छाओं को ग्रहण कर लो अथवा ऐसा न करो। पीड़ायें और यातनाएँ तुम्हारी स्वाधीनता छीनने वाली नहीं, वरन् उसे बढ़ानेवाली है। पीड़ा और यातना के ही कारण

ज्ञाततः अथवा अज्ञाततः, हम अधिक सावधान, अधिक चौकन्ने बनते है और स्वयं अपने ही स्वतंत्र मर्ज़ी से नीची इच्छाओं को त्यागकर ऊँची इच्छाओं को ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रकार पीड़ा और यातना हमें पराधीन बनानेवाली नहीं, वरन् स्वाधीनता देनेवाली है।

यह एक मनुष्य है जिसमें निम्न कोटि की इच्छाओं का प्रावल्य है। अब विषय-भोग सम्बन्धी इन इच्छाओं को पूरा भी होना है और साथ ही उनका त्याग भी आवश्यक है। यह नियम है। चूँकि तुम्हारे दिव्य स्वरूप ने, सर्वेश्वर रूप ने इच्छाओं की पूर्ति की कामना की थी, इसलिए उनकी तृप्ति होनी जरूरी है, पर इन इच्छाओं की तृप्ति के दौर के साथ दर्द, रंज और यातना का आगमन भी आवश्यक होता है, जिससे तुम अन्ततः उस दुर्बलता से मुक्त हो जाते हो। जब एक ओर वह उस वातावरण को भी पसन्द नहीं करता जो उसे रोगी बनाता है अथवा उसे परम्परागत रोग प्रदान करता है, तब दूसरी ओर अपने वातावरण के बुरे स्वरूप के प्रति उसके हृदय में घृणा जमती जाती है और फल-स्वरूप वह इधर-उधर से धक्के खाता हुआ धीरे-धीरे उससे ऊपर उठता और उन्नत होता है।

प्रश्न— निम्न इच्छाओं और रोगों की व्याख्या जो सामान्यतः वंशपरम्परागत माने जाते हैं, यदि मान भी ली जाय तो यक्ष्मा जैसे रोगों का कारण समझ में नहीं आता। उसमें इच्छा की बात कहाँ से आ सकती है। वह तो हमारी तृष्णा का ही फल हो सकता है!

उत्तर—साधारणतः ऊँच और नीच, पाप और पुण्य शब्दों से सारे प्रश्नों की व्याख्या नहीं हो सकती। साधारणतः लोग जिसे अच्छा या बुरा समझते हैं, वह वेदान्त के अनुसार वैसा नहीं है।

वेदान्त के अनुसार अति अधिक भोजन या उस प्रकार का भोजन जिससे अजीर्ण, सुस्ती और चिड़चिड़ापन पैदा होता है, वही सब पापों की जड़ है। बस, यही तनिक सी त्रुटि अधिकांश पापों का कारण है, अजीर्ण

के द्वारा तुम्हारी प्रकृति बिगड़ जाती है और फिर तुम हर एक प्रकार के पाप के गर्त में उतर सकते हो। वेदान्त के अनुसार, जो कुछ तुम्हारे परम आनन्द स्वरूप या चिदानंद को रोकता या पीछे ढकेलता है, वही पाप है। इस भाँति तुम्हारे अधिकांश पापों का मूल मुख्यतः तुम्हारे भोजन का प्रकार है। अन्य धर्म प्रचारक इस बात पर उतना जोर नहीं देते जितना कि "राम" देना चाहता है। किन्तु है यह एक ठोस तथ्य। "राम" केवल अपने ही अनुभव से नहीं, किन्तु प्रिय मित्रों के अनुभव से कह सकता है कि यदि हमारा पेट (आमाशय) आराम से रहता है अथवा यदि हमारा स्वास्थ्य ठीक होता है तो हम अपनी चित्त-वृत्ति को वश में कर सकते हैं, अपने विकारों पर नियंत्रण कर सकते हैं, अपनी इच्छाओं को रोककर उन्हें अपने अनुकूल बना सकते हैं।

आज जो एक आदर्श धर्मात्मा पुरुष है, जो हजारों प्रलोभनों को जीत चुका है, जिसने अपने विकारों पर नियंत्रण कर लिया है, उस आदमी को देखो—जो आज ऐसे निर्मल चरित्र का है, जिसके वर्तमान चरित्र पर विचार करते हुए लोग ऐसा कहने लगते हैं, "अरे! वह तो ईसामसीह जैसा है" वही कल संभव है, वही मनुष्य बुरे से बुरे विकारों के अधीन हो जाय।

लोग एकदम उछल कर परिणाम पर पहुँचना चाहते हैं। वे मानो किसी मनुष्य के माथे पर लिखना चाहते हैं "महात्मा" और किसी के माथे पर "पापी"। किंतु वास्तव में कल जो महात्मा था वही आज पापी बन सकता है, और जो पापी था, वही महात्मा बन सकता है।

चार्ल्स डिकेन्स का एक उपन्यास है। 'दो नगरों की कहानी (A Tale of Two Cities ए टेल आफ टू सिटीज)" नामक उपन्यास में सिडनी कार्लटन (Sidney Carlton) का चरित्र अत्यन्त निकृष्ट कोटि का अंकित किया गया है, किन्तु उसकी मृत्यु इतनी शौर्यपूर्ण, इतनी उत्कृष्ट हुई है कि उसके सम्पूर्ण पाप और दोष धुल जाते हैं। रूसी आर्टिस्ट

टाल्सटाय ने एक उपन्यास लिखा है जिसमें उन्होंने एक ऐसी महिला का चित्रण किया है जो प्रारम्भ में निरन्तर अति कुत्सित विषय-भोगों में लिप्त रही, जिसकी भोग-लिप्सा-वृत्ति अपराधजन्य पराकाष्ठा को पहुँची हुई थी, किंतु उसका अंत इतना मर्म-स्पर्शी हुआ है कि हमें अपनी सम्मति बदलनी पड़ती है।

इँगलैंड में पहले लार्ड बायरन की बड़ी खिल्ली उड़ाई जाती थी, यहाँ तक कि उसका सड़कों पर निकलना भी दूभर था। लोगों को उसकी सूरत से घृणा थी, किंतु उसके जीवन के अंतिम दृश्य इतने श्रेष्ठ और इतने साहसिक हुए कि अंग्रेज लोग उसे प्यार करने लगे। प्रायः सदा हमारे जीवन का अंत श्रेष्ठ नहीं हुआ करता।

जब लार्ड बेकन ने हाउस आफ लार्ड्स में पहला व्याख्यान दिया, तो लोग चकित रह गये। समाचारपत्रों ने लिखा, "एक दिन प्रातः काल जागते ही लार्ड बेकन ने अपने आपको लोकप्रसिद्ध देखा।" वही लार्ड बेकन लोगों की नजरों में गिर गया और घृणित होकर भी जीता रहा।

सर वाल्टर स्काट अपने प्रारम्भिक जीवन में लार्ड बायरन जैसा उत्तम कवि नहीं समझा जाता था। वह एक राज कवि के रूप में कभी अपना सिक्का नहीं जमा सका, किंतु उसके जीवन के अन्तिम समय में उसकी रचना इतनी सुन्दर हुई कि वह उपन्यासकारों का सिरमौर कहलाने लगा।

अतएव "राम" तुमसे कहता है, जिनके संसर्ग में तुम आओ सदा उनकी आध्यात्मिक शक्तियों में, उनकी अनन्त योग्यता में विश्वास करो। आलोचना करना छोड़ दो, कभी कोई विशेष सम्मति स्थिर मत करो और न किसी को दोषी ठहराओ।

तुम्हारे सामने यहाँ एक पापी, एक दुरात्मा खड़ा हुआ है। पर तुम उसके प्रति अपने चित्त में किसी प्रकार के द्वेष, घृणा अथवा शत्रुता के

भावों को स्थान मत दो। उसके पास ऐसे पहुँचो, जैसे उसके गर्भ में अनन्त आत्मिक शक्ति का भारडार भरा हो। यह मत भूलो कि आज का महापातकी कल का परम साधु और शूरवीर नहीं बन सकता है। चरित्र साँचे में ढला हुआ नहीं होता। केवल आत्मा की अनन्त सम्भावनाओं (शक्तियों) और योग्यताओं में विश्वास करो।

जो कोई तुम्हारे पास आवे, उसे परमेश्वरवत् ग्रहण करो, पर साथ ही साथ अपने को भी तुच्छ मत समझो। आज यदि तुम कारागार में हो तो कल तुम गौरवशाली भी हो सकते हो।

पुरानी इंजील में, जिस 'सैमसन' की चर्चा है, जो अपने राष्ट्र के अपमान का कारण बना, वह भी अपने अतीत आचरण का निराकरण कर सकता था, क्षण- क्षण में इस पुराने अपमान के धब्बे धो सकता था। वेदान्त आपसे सच्ची आध्यात्मिकता में, "सच्ची परमेश्वरता में," "हृदयस्थ नारायण" में विश्वास करने के लिए कहता है। उसमें विश्वास करो, और बाहरी निर्णयों को कदापि स्वीकार मत करो। वे कुछ भी मूल्य नहीं रखते, क्योंकि हम उनको मिटा सकते हैं। हम उनसे ऊपर उठ सकते हैं।

जहाँ ऐसी आध्यात्मिकता है वहीं सारी वस्तुयें हैं, और यह आध्यात्मिकता सर्वत्र आ सकती है।

संसार के मत संसार के सदाचार को समझने में गलती करते हैं। वे सम्पूर्ण पापों की जड़ तक नहीं पहुँचते। जिस मनुष्य ने आज बड़े से बड़े प्रलोभन का प्रतिरोध किया है, वही कल घातक और जाति-बहिष्कृत हो सकता है। कर्म और देह—दोनों दृष्टियों से इस रहस्य की व्याख्या हो सकती है।

स्थूल लोक में (भौतिक दृष्टि से) हमारे चरित्र के इस परिवर्तन की व्याख्या यह है कि जब तुम्हारा शरीर स्वस्थ रहता है, जब तुम्हारा पेट ठीक होता है, तब तुम्हारा चरित्र भी बहुत ठीक होता है और तुम

प्रलोभनों का सामना कर सकते हो। कल यदि तुमको कोई रोग, कोई व्याधि घेर लेती है, तुम्हारा पेट दुरुस्त नहीं रहता है, तो ऐसी दशा में ज़रा सी भी बात तुम को क्षुब्ध, व्यग्र या अस्तव्यस्त कर सकती है, यह एक ठोस तथ्य है।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि धर्म-प्रचारक इस विषय की चर्चा करना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझते हैं।

अतः अपने भोजन के सम्बन्ध में सदा सावधान रहो, और तुम अपने रोग को अच्छा कर लोगे।

पेट में अधिक ठूँसना, अनुचित भोजन का व्यवहार सारे पापों की जड़ है। जिस मनुष्य में इस प्रकार की प्रवृत्ति है, वह वेदान्त की दृष्टि में उतना ही बड़ा पातकी है जितना कि अन्य सात पापों में से एक या सातों पापों का करनेवाला। पेट का प्यार ही हमें ठीक उन देहों में, उस माता-पिता के पास पहुँचा देता है, जिनकी चर्चा पहले की जा चुकी है, फिर कष्ट और यातना के द्वारा ही हम उस दिव्य सत्य तक पहुँच पाते हैं।

प्रश्न—अनेक बच्चों के कुटुम्ब में एक बच्चा साधु, एक पापी, एक स्वस्थ, एक बीमार इत्यादि अनेक प्रकार के बच्चे पैदा होते हैं। यह क्या बात है? वे ऐसे विभिन्न क्यों होते हैं? आप इस वैचित्र्य की व्याख्या कैसे करेंगे?

उत्तर—व्यक्तियों का जन्म कैसे होता है? यह तो आप समझते हैं। एक ही कुटुम्ब के बच्चों में इतना अन्तर कैसे होता है—इसके लिए देखो कि उनमें एक न एक बात सामान्य रहती है। एक मनुष्य छापेखाने में काम करता है, दूसरा रोगन के कारखाने का काम करता है, तीसरा तेल की कोठी में, चौथा कपड़े के पुतलीघर में इत्यादि। ये सब लोग भिन्न-भिन्न व्यवसायों में लगे हुए हैं, किन्तु उन सबमें एक बात सामान्य है। वे सबके सब एक ही दूकान से कपड़ा खरीदते

हैं। इसी तरह यदि अन्य बातों में बच्चों में अभेद है, तो यह आवश्यक नहीं कि उनमें कोई भी सामान्य बात न हो।

इन नव बच्चों में एक अभिलाषा अवश्य सामान्य होगी, अपने माता-पिता से अनुराग। यह बात उन सबमें समान होगी। उन सबको उस घर से, उसकी सम्पत्ति से अथवा उस अड़ोस-पड़ोस से स्नेह था, किन्तु उनकी दूसरी इच्छायें पृथक-पृथक् थीं। यह इस प्रकार है जैसे इस संसार में कोई एक सड़क से आता है और दूसरा दूसरी सड़क से, किन्तु वे एक चौराहे पर मिल जाते हैं। हर एक अपनी-अपनी राह आ रहा है, और चौराहे पर उनका क्षणिक मिलाप हो जाता है।

प्रश्न शरीर छोड़ने के अनन्तर क्या हम प्रेत-संसार में अपने आप को पूर्णता की ओर ले जा सकते हैं?

उत्तर—वेदान्त के अनुसार हम भावी जन्मों में अपने आपको पूर्ण करते रहते हैं। हमारे भावी जन्म हैं, हमारे भावी जीवन हैं, जिनमें हम अपने को पूर्ण करते हैं। प्रेतलोक तो हमारे लिए हर २४ घंटों में आनेवाले स्वप्न के तुल्य हैं।

प्रश्न—क्या हम आध्यात्मिक रीति से उनकी सहायता कर सकते हैं, जिनकी जीव-आत्मायें यहाँ से जा चुकी हैं?

उत्तर—हाँ, कर सकते हो। उनके चित्र या उनकी मानसिक मूर्तियाँ अपने सामने रक्खो और फिर सोचो, अनुभव करो भान करो कि वे परमेश्वर रूप हैं। ऐसा करने से तुम उनकी सहायता करोगे। उनके लिए अच्छे विचार करो, उनके लिए अत्युत्तम भावनाएँ रक्खो। इस प्रकार तुम उनकी सहायता करोगे तथा अपने आपको भी सहायता करोगे।

प्रश्न—क्या वे कभी स्थूल बातों में हमारी सहायता करते हैं?

उत्तर—यदि इस स्थूल लोक में दूसरे लोग तुम्हें सहायता दे

सकते हैं, तो हम कह सकते हैं कि मृतक भी तुम्हारी सहायता करते हैं। किन्तु वेदांत के अनुसार स्थूल लोक में भी तुम्हीं स्वयं अपने आप के सहायक बनते हो, फिर मृतकों की सहायता की चर्चा ही क्या! तुम्हीं हो जो अपने आपकी सहायता करते हो, चाहे मृतक की हैसियत से करो चाहे जीवित शरीरों के द्वारा। इस लिए वेदान्त आप से चाहता है कि बाहर कुछ मत ढूँढिये, अपना केन्द्र अपने अन्दर रखिये और हर एक वस्तु को अन्तर में ही ढूँढिये और वहीं से आशा कीजिये। यदि तुम में पात्रता है तो तुम्हें अभिलाषा करने की कोई ज़रूरत नहीं। इच्छित वस्तुयें स्वयं तुम्हारे पास आयेंगी, तुम्हारे पास लाई जायँगी। यदि तुम अपने आपको योग्य बना लो तो सहायता अवश्यमेव तुम्हें आ मिलेगी। अब हम उस प्रश्न पर आते हैं जो कुछ दिन पहले उठाया गया था।

यदि कोई मनुष्य ऐसे वातावरण में रहता है जो हर घड़ी उसमें भारत का प्रेम पैदा करता है, जो हर घड़ी उसमें भारतीय विचारों का संचार करता है यदि वह ऐसी पुस्तकें पढ़ता है और ऐसे मनुष्यों के संसर्ग में आता है जिससे निरंतर भारतवर्ष उसके सामने बना रहता है, तो वह मनुष्य चाहे अमेरिकन हो या अंग्रेज़, अपने विचारों के फल-स्वरूप भारतवर्ष में जन्म लेगा। इस प्रकार अपनी ही इच्छाओं से वह भारतवर्ष में पैदा होगा।

प्रश्न—क्या मनुष्य लौट-लौटकर फिर कुत्तों और बिल्लियों की योनियों में जाते हैं?

उत्तर—बिल्लियों, कुत्तों और दूसरी पशु-योनियों में जन्म लेने के विषय में सारी बातें उस वातावरण पर निर्भर हैं जिनमें वे पलते रहते हैं। मनुष्यों के भावी जन्म उनकी वर्तमान परिस्थिति और वातावरण पर निर्भर हैं।

किसी समय भारतवर्ष में एक महात्मा के पास दो मनुष्य पहुँचे,

उनमें एक कुत्ते जैसी प्रकृति का था, और दूसरा बिल्ली की प्रकृति का। अथवा आप यों कह सकते हैं कि एक बिल्ली और एक कुत्ता महात्मा के पास पहुँचे। कुत्ते ने महात्मा से यह प्रश्न किया, "महाराज! यह बिल्ली अथवा बिल्ली जैसा मनुष्य है। वह बड़ा दुष्ट और धूर्त है, वह बड़ा ही बुरा है। भला, बताइये अपने दूसरे जन्म में उसकी क्या गति होगी?" तदुपरान्त बिल्ली जैसे स्वभाववाला मनुष्य महात्मा के आगे आया और वही प्रश्न किया, "महाराज! यह कुत्ता जैसे स्वभाववाला मनुष्य है। वह बड़ा खराब है, खूब घुड़कता और भूँकता है। मृत्यु के बाद दूसरे जन्म में उसका क्या हाल होगा?" महात्मा चुप रहे। किन्तु बारम्बार यही प्रश्न किये जाने पर वे बोले, "भाइयो! तुमने ये प्रश्न न किये होते तो अच्छा होता।"

किन्तु फिर भी उन्होंने उत्तर के लिए बड़ा आग्रह किया। महात्मा ने कहा, "अच्छा, यहाँ एक बिल्ली है! हे कुत्ते! यह बिल्ली तुम्हारा साथ करती है और तुम्हारी आदतें सीख रही है, सदा तुम्हारे साथ रहती है, और हर घड़ी तुम्हारी चाल-ढाल ग्रहण कर रही है। अच्छा, तो अगले जन्म में यह बिल्ली कुत्ता होगी, उससे इतर क्या हो सकता है?" और कुत्ते के सम्बन्ध में कहा—"ऐ बिल्ली! देखो, यह कुत्ता तुम्हारे साथ रहता है, हर घड़ी तुम्हारे लक्षण ग्रहण करता है, तुम्हारी आदतों में योग दे रहा है। अब अपने दूसरे जन्म में यह अवश्य बिल्ली होगा।" सारी बातें इस पर निर्भर हैं कि कौन कुत्ते का और कौन बिल्ली का साथ करता है। अब इस प्रश्न के विषय में हमें अधिक गहरे जाने की कोई जरूरत नहीं है।

प्रश्न—मृत्यु के बाद मनुष्य को पुनर्जन्म लेने में कितने दिन लगते हैं?

उत्तर—दिन में मनुष्य प्रायः सभी तरह के काम करता है। और रात्रि में सो जाता है, और दूसरे दिन सबेरे फिर जागता है। उसके सोने का समय मृत्यु के समान है, और फिर से जाग पड़ने का समय

पुनर्जन्म के समान है। उसके सोने के क्षण से लेकर जगाने के क्षण तक के बीच में जो समय बीतता है, वह उस समय के समान है जो तुम स्वर्ग, नरक, या प्रेतलोक में बिताते हो। अब हम देखते हैं कि इस दुनिया में कुछ लोग केवल चार या पाँच घंटे सोते हैं, कुछ लोग आठ घंटे सोते हैं, और कुछ दस घंटे। बच्चे देर तक सोते हैं। बूढ़े आदमी अधिक नहीं सोते हैं। युवा मनुष्यों को सोने की अधिक जरूरत होती है। सो बहुत कुछ मनुष्यों की भिन्नताओं पर, उनकी आध्यात्मिक उन्नति के स्तर पर निर्भर करता है। जिस भाँति इस दुनियाँ में तुम्हारे जीवन का कोई नियत समय नहीं है, कुछ लोग युवावस्था में मर जाते हैं, कुछ तीस वर्ष जीते हैं, कुछ सत्तर वर्ष, उसी तरह पुनर्जन्म के लिए कोई नियत समय नहीं है।

प्रश्न—क्या कोई मनुष्य इस युग में वेदान्त का अनुभव कर सकता है? बीसवीं शताब्दी की सभ्यता में रहता हुआ क्या कोई मनुष्य वेदान्त का अनुभव कर सकता है? यह कहा जाता है कि वेदान्त के अनुभव के लिए मनुष्य को इस तरह या उस तरह का जीवन व्यतीत करना चाहिए। उसे हिमालय के वनों में चला जाना चाहिए'।

उत्तर—"राम" कहता है—नहीं, नहीं, तुम्हें वन में जाने की कोई जरूरत नहीं है। लोग कहा करते हैं कि हमें समय नहीं मिलता है। हमारा समय नित्य के कामों में बीत जाता है, हमें तरह तरह के कामों को देखना पड़ता है, हमारे सम्बन्धी और मित्र हमारा बहुत सा समय ले लेते हैं। एक प्रार्थना है, "हे परमेश्वर! हमें हमारे शत्रुओं से बचाइये" ;किन्तु आज कल के मनुष्य को यह प्रार्थना करना चाहिए, उसका उचित ढंग यह होगा—"हे परमेश्वर! मुझे मेरे मित्रों से बचाइये।" मित्र हमारा बहुत सा समय लूट लेते हैं, उसके बाद चिन्ताओं का नम्बर आता है।

एक बात उपसंहार रूप से। आप जानते होंगे, पढ़ना या अध्ययन

करना अनेक प्रकार का है। कुछ लोग तोते की भाँति केवल जिह्वा से पढ़ते हैं, कुछ लोग हाथों द्वारा विद्याभ्यास करते हैं, जैसे नौकाकार या कारीगर। 'राम' के कहने का यह अभिप्राय नहीं कि कारीगर वैज्ञानिक नहीं होते, किन्तु ऐसे कारीगर भी हमने देखे हैं जो वैज्ञानिक नहीं होते। ऐसे लोग हैं जो खड़ी धारा में तैर सकते हैं किन्तु जलविज्ञान के संबंध में कुछ भी नहीं जानते। ऐसे लोग हैं जो हवा में जहाज ले जा सकते हैं, किन्तु उन्हें वायुविज्ञान का तनिक भी ज्ञान नहीं होता। औषधियों के बनानेवाले प्रायः तत्वविज्ञान से बिलकुल अनभिज्ञ होते हैं। जो लोग अपने हाथों से विद्याभ्यास करते हैं वे स्वागत योग्य हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो केवल हृदय से अध्ययन करते हैं। वे लोग भी दुनिया में धन्य हैं। जो लोग एक ही नजर में वस्तुओं का ज्ञान और अनुभव कर लेते हैं, जो लोग (Clairvoyant) दिव्यदर्शी होते हैं, हर एक वस्तु देख लेते हैं, उनका भी स्वागत है। किन्तु यदि वे केवल अपने हृदय से ही अध्ययन करते हैं,तो उनकी शिक्षा से कोई लाभ नहीं। उनमें ऐसी उत्कट इच्छा होना चाहिए और साथ ही साथ उन्हें खूब अभ्यास होना चाहिए, ताकि वे अपनी विद्या, अपनी शिक्षा दूसरों को प्रदान कर सकें। यदि वे केवल हृदय का ही अनुसरण करते हैं, तो वे एकांगी रह जाते हैं। इस संसार में सबसे अधिक उपयोगी मनुष्य वही हैं जो तीनों पहलुओं से काम करते हैं, जिनका मस्तिष्क, जिनका हृदय, जिनके हाथ और जिह्वा—सभी भले प्रकार चलते हैं। यही सर्वाधिक उत्तम शिक्षा है, वास्तव में वही संस्कृत है।

इसी भाँति राम चाहता है कि आप इन सभी मार्गों से मस्तिष्क, हृदय, हाथ और जिह्वा, अर्थात् प्रत्येक पहलू से वेदांत का अध्ययन करें और सीखें। वह तुम्हारे रक्त में झनझना उठे, वह तुम्हारी धमनियों और नसों में घूमने लगे। वह तुम्हारे हृदय में फैलकर व्याप्त हो जाय, तुम्हारा मस्तिष्क उसमें डूब जाय, तुम्हारा सारा जीवन और प्राण उस

में भीग जाय। तभी तुम अपने को उन्नत करोगे, तभी तुम हर दृष्टि से स्वतंत्र होगे। तभी तुम अपने परम परमेश्वर, अपने सच्चे स्वरूप का अनुभव करोगे। तभी तुम प्रत्येक स्थितिबिन्दु से पूर्णतया स्वतंत्र होगे।

'राम' आपसे कहता है कि यदि आप इस शरीर या उस शरीर की योग्यता में, अन्तर पाते हैं, यदि आप ऐसा समझते हैं कि अमुक मनुष्य जो कुछ उपदेश देता है, उसे उसने अपने हृदय और हाथों में नहीं उतारा है तो उससे आपको क्या? आप स्वयं उस विषय को अपनावें, मन बुद्धि और अन्तःकरण से उस सत्य का पालन करें, उसे आचरण में उतारें; आप उच्च, श्रेष्ठ और महान् हो जायँगे। 'राम' की आकांक्षा है कि आप वही हो जाँय और वही बन जायँ।

यदि 'राम' में हजारों दोष हैं, यदि वह हज़ारों भूलें या त्रुटियाँ करता है, तो आप से प्रयोजन? 'राम' स्वयं उन भूलों का उत्तरदायी है। 'राम' तो तुम्हें श्रेष्ठतम सत्य देता है इसे सजीव करलो और तुम्हें सुख मिलेगा, यह तुम्हें सारे संशयों से पार कर देगा।

मान लो कि 'राम' जैसा उपदेश देता है, उसके अनुसार बर्ताव नहीं करता है। हो सकता है कि राम ऐसी परिस्थिति और वायुमण्डल में रहता हो जो उसे ऐसा नहीं करने देते। किन्तु तुम इस वेदान्त के अनुसार चल सकते हो, इसका प्रयोग कर सकते हो।

इसी तरह कालविनों ने (Calvins), एडीसनों (Edisons) ने एवं अन्य महापुरुषों ने केवल अपने मस्तिष्क से ढाँचा खड़ा किया था। उनके नमूने—नक्शे हाथ से नहीं बनाये जा सकते थे। उनके लिए एक विशेष प्रकार के यन्त्रों की जरूरत थी। इसलिए वे आपको केवल नक्शे या योजनायें दे गये हैं। तुम्हारे हाथ हैं, और तुम उन यन्त्रों को बना सकते हो, उन्हें चला सकते हो। तुम में उन नक्शों को बनाने अथवा उन योजनाओं को निकालने की योग्यता भले न हो, किन्तु उन्हें ग्रहण करने और उन्हें अमल में लाने के लिए तुम्हारे हाथ तो अवश्य हैं।

श्रमजीवियों के कष्ट का कारण यही है कि जो नेकी और योजनायें उन्हें दी जाती हैं, वे उनको ग्रहण करके व्यवहार में नहीं लाते हैं।

"इसी भाँति उन लोगों के तर्क भी झूटे हैं जो यह कहते हैं कि हम अमुक शिक्षक से इसलिए कुछ भी न ग्रहण करेंगे, क्योंकि वह जैसा उपदेश देता है स्वयं तदनुसार आचरण नहीं करता है।"

दूसरा उदाहरण, एक मनुष्य पौष्टिक औषधियाँ, दूध या मिठाइयाँ बेचता है। चूँकि वह स्वयं उन औषधियों को नहीं लेता है, दूध नहीं पीता है अथवा मिठाई नहीं खाता है, इसलिए क्या आप उससे कुछ खरीदेंगे नहीं?

यदि किसी चिकित्सक के रोगी रहने के कारण तुम उसकी बताई औषधि नहीं ग्रहण करते, तो वेदान्त कहता है, आप गलती पर हैं। चाहे वह स्वयं अपने रोग के लिए उपयोगी उपचार न जानता हो चिकित्सक किसी विशेष रोग से बीमार हो सकता है। किन्तु जिस रोग से आप पीड़ित हैं उसकी चिकित्सा वह जानता है, जिस रोग से वह स्वयं पीड़ित है उसकी दवा वह नहीं जानता है। हो सकता है, वह अपने आपको चंगा न कर सकता हो। किन्तु साथ ही साथ वह आप को तो निरोग कर सकता है।

इसी भाँति 'राम' बतलाता है कि भारत और अमेरिका में बहुत से लोगों से वार्तालाप करते समय उसे पता चला है कि लोग पहले जब तक ग्रंथकार का नाम नहीं जान लेते, तब तक उस पुस्तक को नहीं पढ़ते। बहुत से कहते हैं, "यह तो एक ऐसा ग्रंथकार है, जिसने यह या वह जघन्य पाप किया है, वह अपने को परमेश्वर कहता है। मैं उसकी पुस्तक नहीं पढ़ना चाहता।" 'राम' कहता है—भाई! प्यारे भाई! ऐसी गलती मत करो। मनुष्य चाहे दुष्ट हो, परन्तु जो सत्य वह तुम्हें बतलाता है उस पर विवेचन करो, सत्य को उसी के गुण-दोषों के अनुसार परखो।

भारतवर्ष में रहट के द्वारा कुओं से पानी निकाला जाता है। कुओं से पानी निकलकर एक विशेष प्रकार से बने हुए हौदों में गिरता है, और फिर छोटी-छोटी नालियों के ज़रिये पानी उन हौदों से खेतों में पहुँचाया जाता है। जब जल कूप में होता है तब उसके किनारे हरियाली आदि नहीं होती, और न पेड़-पौधे होते हैं। जब जल हौद में होता है तब भी वहाँ कोई घास-फूस नहीं होती किन्तु जब जल खेतों में पहुँचता है, तब भूमि उर्वरा और सम्पन्न हो जाती है, और हरियाली प्रकट होती है। इसी प्रकार हमें यह तर्क नहीं करना चाहिए कि जल खेतों में हरियाली पैदा नहीं कर सकता, क्योंकि जब पानी कुँए या हौद में था तब वहाँ कोई हरियाली न थी।

अतएव राम आपसे कहता है कि जब ज्ञान आपके पास पहुंचे तो उसे ग्रहण कर लीजिये, चाहे वह कहीं से भी आये। यह मत कहो—"ज्ञान भारत से आता है और भारतवासी स्वयं भौतिक पलड़े में इतने नीचे हैं!" सत्य को उसी के गुण-दोषों से परखो। मनुष्यों को सुखी करने का केवल एक यही उपाय है; सच्चे कल्याण का, परमेश्वरत्व-प्राप्ति का केवल यही मार्ग है। यही आपको सारी चिन्ताओं से छुटा देगा, यही आपको सारे कष्टों से ऊपर उठा देगा। यही एकमात्र मार्ग है, दूसरा कोई नहीं!

इसी प्रकार 'राम' आपसे कहता है कि यदि ईसा का चरित्र अत्यन्त श्रेष्ठ था तो उससे यह परिणाम न निकालो कि ईसा के उपदेश सम्पूर्ण सत्य हैं और सत्य के सिवा उनमें कुछ भी नहीं है। कभी-कभी हम अत्यधिक सुन्दर युवकों को घृणित से घृणित कार्य करते देखते हैं। किसी मनुष्य के कर्म चाहे जितने श्रेष्ठ हों, उसके उपदेश और लेख भी चाहे कैसे उत्तम हों, किन्तु यह निश्चित नहीं कि जो कुछ उससे निकलता है वह सब उत्तम ही उत्तम है। उसका रक्त, उसकी हड्डियां तो कदापि अच्छी नहीं है।

इसी तरह इंजील पढ़ने से जो कुछ उससे निकलता हो वह सब ईसा के उपदेशों में सम्मिलित न करो। हज़रत ईसा पूर्ण हैं, उनके उपदेश पूर्ण हैं? किन्तु जो एक का है उसे दूसरे के मत्थे मत मढ़ो। पुस्तक को उसकी योग्यता से परखो। सर आइज़क न्यूटन की रचना 'प्रिंसिपिया' में अनेक भूलें हैं। चाहे वह अपने समय का सर्वश्रेष्ठ मनुष्य रहा हो, तथापि उसकी पुस्तकों का विवेचन उनके गुण-दोषों के अनुसार ही होगा।

इसी भाँति 'राम' कहता है कि आपको 'राम' की भलाइयों और बुराइयों से कोई मतलब नहीं है। उसके आध्यात्मिक उपदेश को उसी उपदेश की भलाई-बुराई के अनुसार परखो। वेदान्त के उपदेश आप को ऊपर उठाने और उन्नत करते हैं। 'राम' यह नहीं चाहता कि आप उपदेश को यह समझ कर ग्रहण करें कि राम उन्हें देता है, वह उपदेश तो तुम्हारे लिए है, वह तुम्हारा है।

वेदान्त का अर्थ किसी की गुलामी नहीं है। बौद्धधर्म बुद्ध की गुलामी है, इस्लाम मुहम्मद की गुलामी है, पारसी मत ज़ोरोआस्टर की गुलामी है, किन्तु वेदान्त किसी महात्मा की गुलामी नहीं है। वह तो सत्य है, ऐसा सत्य जो हर एक व्यक्ति का है।

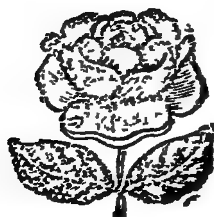
जब हम घाम में बैठते हैं तो हम उसके कृतज्ञ नहीं होते, क्योंकि सूर्य तो प्रत्येक मनुष्य का है। यदि 'राम' वेदान्त के घाम में बैठना है, तो तुम भी उस घाम में बैठ सकते हो, वह आपका भी उतना ही है जितना कि 'राम' का। सत्य आपका भी उतना ही है जितना भारतवर्ष का। इसे इसकी योग्यता के हिसाब से स्वीकार और ग्रहण करो। यदि यह अच्छा है तो रक्खो। यदि यह बुरा है तो बाहर ठुकरा दो। जिस प्रकार इस्लाम और ईसाईपन भारत में तलवार और रुपये के बल पर लादी जाती है, उस तरह राम यह वेदान्त यहाँ नहीं

ला रहा है। राम उस तरह इसे नहीं लादता है। वेदान्त आपका है, इसे लो और इसका अभ्यास करो।

यदि कोई मित्र बाम में बैठता है पर उसका उपयोग नहीं करता, तो यह कोई कारण नहीं कि तुम भी बाम का उपयोग न करो। यही बात वेदान्त के बारे में है। इसे इसकी योग्यता के अनुसार परखो। इसे सीखो। अपने चरित्र में उतारो। व्यक्तित्व के भाव से ऊपर उठो। ईसामसीहों, बुद्धों, मुहम्मदों या रामों से ऊपर खड़े हो। राम कहता है, "इस शरीर को अपने पैरों से कुचल डालो।" 'यह शरीर मैं नहीं हूँ,' यह अनुभव करो, ऐसा मनन करो। जानो कि 'मैं वास्तविक तत्त्व हूँ,' ऐसा ही मुझे जानो और स्वाधीन हो जाओ। यह अनुभव करो, ॐ उच्चारण करो। "मैं हूँ"—ॐ, जिहोवा, ईसाओं का ईसा। मुझे जानो और मैं तुम हूँ। इसका अनुभव करो, और तुम सब चिन्ताओं से परे हो जाओगे। यह सब लड़खड़ाहट और जल्दबाजी छोड़ दो, और तब तुम भी ईसामसीहों, मुहम्मदों, पीर-पैगम्बरों अथवा अन्य सबसे, जो स्थायी पथदर्शक माने जाते हैं, ऊपर उठ जाओगे।

वे सब परिवर्तनशील हैं। सब चलायमान हैं। परम तत्व को जानो। इन प्रतिबिम्बों के कारण उस मूल रूप परमतत्व को जानो। उसे जानो और स्वाधीन हो जाओ।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!



साधारण बातचीत

प्रश्न—क्या भविष्य में कोई एक ऐसा धर्म होगा, जो मनुष्यमात्र पर एक समान शासन करेगा ?

उत्तर—हाँ और नहीं, दोनों । भविष्य में हमारे यहां ऐसे धर्म न होंगे जो मनुष्य-जाति पर शासन करें । भविष्य में धर्म मनुष्य पर शासन नही करेगा और न मनुष्य-जाति धर्मों से सम्बन्धित रहेगी, वरन् धर्म स्वयं मनुष्य से सम्बन्धित होगा ।

प्रश्न—क्या केवल एक धर्म सभी मनुष्यों पर शासन करेगा ?

उत्तर—नहीं, भविष्य में कोई धर्म मनुष्य पर शासन नही करेगा । धर्म, संस्थायें, नियम, कानून—ये सब मनुष्य से सम्बन्धित होंगे ।

नियम मेरे लिए हैं । मै नियम और संस्थाओं के लिए नहीं बनाया गया हूँ ।

भविष्य में जो धर्म होगा, वह मनुष्य-जाति पर शासन नहीं करेगा, वरन् उसकी सेवा करेगा ।

'एक धर्म' क्या है ? इसके विषय में राम कहता है—हाँ, केवल एक ही धर्म होगा, जो मनुष्य-मात्र की सेवा करेगा, उसके काम आयेगा । और वह धर्म कौन सा होगा ? उस धर्म के बारे में बतलाने से पहले राम कहना चाहता है कि उस धर्म का कोई नाम न होगा ।

फिर वह होगा क्या ? राम कहता है कि वह वेदान्त होगा, जो विज्ञान का धर्म है । वेदान्त सार्वभौमिक धर्म है ।

और देखो, यदि धर्म शब्द से तुम्हारा अभिप्राय किसी मत-पथ से है, जो लिखा-पढ़ा है, कोई ऐसी चीज़ है जो निश्चित कर दी गई है,

जो कभी बदली नहीं जा सकती, यदि तुम धर्म से ऐसी बातें समझते हो तो सावधान हो जाओ। निकट भविष्य में ही ऐसा अर्थ रखनेवाला कोई धर्म न रह जायगा। देखो, आज ऐसे लोग हैं, जो विज्ञान का अध्ययन करते हैं, जो यह देखने के लिए कि ज्ञान के उच्च मण्डलों में क्या हो रहा है—सदैव अपनी आँखे खोले रहते हैं। इस प्रकार के बन्धन-मुक्त पुरुष सभी सम्प्रदायों, मत-पथों से ऊपर रहते हैं। सच्चा धर्म हमें मुक्त करने के लिए होता है, न कि हमें बाँधने के लिए। धर्म का उद्देश है कि हमें राज्य करना, शासन करना सिखाये, न कि हमें उलटा गुलाम बनाये।

धर्म के भिन्न-भिन्न नाम हो जाने से इस संसार में बड़े-बड़े अनर्थ हो रहे हैं। बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म का काम देखो, उनके विचारों में भी दुनिया भर का अन्तर है।

बौद्ध धर्म ने भारतवर्ष को चार सम्प्रदायों में बाँट दिया। चीन में बौद्ध धर्मावलम्बी सात सम्प्रदायों में बटे हुए हैं।

एक आदमी कहता है कि मैं हिन्दू हूँ और वह मुसलमानों या ईसाइयों से लड़ता है। पर क्यों ? केवल इसलिए कि वह हिन्दू धर्म का नाम ऊँचा रखना चाहता है। यदि तुम हिन्दुओं की विचार-धाराओं का विश्लेषण करो तो तुम्हें हजारों ऐसे हिन्दू मिलेंगे, जिनकी भावनायें ईसा की शिक्षा से अपेक्षाकृत अधिक मिलती-जुलती होंगी—उनकी अपेक्षा जो स्वयं अपने आपको ईसाई कहते हैं। और विचित्रता यह है कि वे भी किसी एक ऐसे नाम की पोशाक पहने हुए हैं, जैसे कि ईसाई। तात्पर्य यह कि सब के सब केवल नाम के भक्त हैं।

भविष्य के धर्म के विषय में एक शब्द और। भविष्य में एक धर्म होगा, जो सबके लिए, प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक समान उपयोगी होगा, जब कि विज्ञान अथवा वेदान्त का साहित्य हर एक घर में, हर एक गाँव में घर कर जायगा, फैल जायगा। वह दिन दूर नहीं, जब कि वेदान्त,

विज्ञान का धर्म सारे संसार में व्यापक हो जायगा। किन्तु मनुष्यों को वेदान्त के नाम से ऊपर उठना होगा। उसे बुद्ध के नाम से ऊपर उठना होगा। यथार्थ में उसे सभी नामों से, प्रत्येक नाम से ऊपर उठना पड़ेगा।

तुम्हारे कुछ विशेष विचार हैं। तुम्हारे पास एक ऐसा मनुष्य आता है, जो सोचता है कि स्वर्ग का मार्ग केवल उसके पंथ के द्वारा ही तय किया जा सकता है। अब यह प्रश्न तो उसके और उसके ईश्वर के बीच का है। तुम्हें उसमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं।

बस, इस बात को स्वीकार करो कि हर एक मनुष्य का धर्म उसके और उसके ईश्वर के बीच का प्रश्न है। वेदान्त सबसे पहले सब से आवश्यक बात यही सिखाता है कि आप इस सत्य को स्वीकार करें।

प्रश्न—जो मनुष्य आत्मघात करते हैं, उनकी आत्माओं का क्या हाल होता है?

उत्तर—राम कहता है—प्रत्येक मनुष्य आत्मघात करता है। वह जो मरता है, आत्मघात करके ही मरता है। जो स्वभावतः मरते हैं, उनका क्या हाल होता है? कुछ भी नहीं, कोई विशेष बात नहीं। इसी भाँति जिन्हें तुम आत्मघाती कहते हो, उनका भी कोई विशेष परिणाम नहीं होता। तुम उस समय तक नहीं मर सकते, जब तक इस जीवन में तुम्हारा कार्य पूरा नहीं हो जाता। सोचिये, हमारी मृत्यु कैसे घटित होती है।

लोग अपनी इच्छाओं के चक्कर में पड़कर, अज्ञान के वशवर्ती होकर इस प्रकार फँस जाते हैं कि वे स्वयं अपने शरीर का अन्त देखने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। वे अपने हृदय के अन्तस्तल में मृत्यु की कामना करते हैं और मृत्यु उनके पास आ पहुँचती है। यही नियम है। अपनी ही इच्छाओं से हम रोग बुलाते हैं और अपनी पूर्ववर्ती इच्छाओं के फलस्वरूप, जो रोग-शय्या पर फलवती होने लगती हैं, वे ऐसी स्थिति

में पहुँच जाते हैं, जहाँ वे सच्चे दिल से मृत्यु की कामना करते हैं और मृत्यु आ जाती है। सभी आत्मघाती हैं।

प्रश्न—क्या पूर्वजन्मों को याद करना संभव है?

उत्तर—वह मनुष्य जो अपने पूर्वजन्मों को स्मरण करने की चेष्टा करता है, उस आदमी के समान है, जो कई एक सड़कों पर चल चुका है और जिसे पांच सड़कों पर चलना और शेष है। अब वह उस सड़क के बारे में पूछताँछ करता है, जहाँ से वह चला था, उसके बाद उन सड़कों को जानना चाहता है जिन्हें उसने पार कर लिया है, वह जानना चाहता है कि १५ मिनिट पूर्व वह कहां था, १ घण्टे पहले कहाँ था। क्या यह सब व्यर्थ का परिश्रम नहीं है? मनुष्य को सदा आगे देखना चाहिए। आपने इतनी अधिक सड़कें पार की हैं, इतने अधिक जन्म आप ले चुके हैं और अभी आपको और भी आगे जाना है। आगे बढ़ो, सब बातें ठीक रहेंगी। यदि बीच में ठहर जाते हो, तो समय नष्ट करते हो, अपनी उन्नति में स्वयं बाधा डालते हो। बस, आगे बढ़ो।

प्रश्न—क्या भौतिक शरीर में रहते हुए ज्ञातत: हमारा मानसिक लोक में व्यक्त होना संभव है? थियोसोफीकल आचार्यों ने इस विषय में 'न' कहा है।

उत्तर—इस प्रश्न में कई बातें विचारणीय हैं और इस समय उनके ब्यौरे में जाने का उपयुक्त समय नहीं।

अच्छा, थियोसोफिकल शिक्षक 'न' कहकर ठीक ही कहते हैं। शारीरिक और मानसिक जगत् साथ ही साथ चलते हैं। मानसिक सोच सदा मस्तिष्क के द्वारा ही होना चाहिए, किन्तु इसके साथ ही हम यह भी देखते हैं कि भौतिक जगत् में कार्य केवल मस्तिष्क से नहीं होता, शरीर को भी काम करना पड़ता है। मन भौतिक जगत् में बहुत से काम करता है। जहाज़, बेतार के तार, सब के सब तुम्हारे मानसिक

विचारों के प्रादुर्भाव हैं, किन्तु ये सभी भौतिक वस्तुयें भौतिक जगत् में शरीर के साधन द्वारा ही निर्मित होती हैं। जहाज़ और हवाई जहाजों को बनाने के लिए औज़ारों का व्यवहार करना पड़ता है। इनमें कप्तान कौन है, मन या औज़ार? मन भी एक औज़ार है, कर्ता नहीं।

सभी बड़े-बड़े जहाज़, बड़े-बड़े भवन, कला के सुन्दरतम उदाहरण मस्तिष्क से सोचे और नियोजित किये जाते हैं और फिर शरीर के द्वारा बनाये जाते हैं।

एकता का अनुभव करने के लिए तुम्हें उन दोनों बातों का उपयोग करना होगा। एकता का अनुभव करना और मानसिक जगत् में व्यक्त होना भिन्न-भिन्न चीजें हैं। एकता को प्रत्यक्ष करने के लिए शारीरिक और साथ ही साथ मानसिक जगत् को भी हेय समझना चाहिए। दोनों दुनियादारी है।

प्रश्न—यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है और हम ईश्वर हैं, तो हम आँखों से क्यों नहीं सुनते अथवा कानों से क्यों नहीं देखते?

उत्तर—तुम यह कहते हो,—हाथ-पैर, नाक-आँख आदि हमारे हैं। यदि ये सब तुम्हारे हैं तो तुम कानों से क्यों नहीं देखते अथवा आँखों से क्यों नहीं सुनते। यदि ईश्वर एक और सर्व-शक्ति-सम्पन्न है तो उसे जैसा चाहे वैसा करने दो।

ईश्वर कुछ लोकों में मस्तिष्क द्वारा और कुछ लोकों में शरीर के द्वारा व्यक्त होता है। वह सारे ब्रह्माण्ड में व्यापक है। यदि वह आश्रित होता तो उसे मनुष्य की इच्छाओं और कल्पनाओं का भी ख्याल करना पड़ता।

पर वह किसी नियमों, शक्तियों अथवा मनुष्य की कल्पनाओं से बँधा हुआ नहीं, वह जैसा चाहता है, वैसा करता है।

राम तुम्हें बतलाता है कि तुम सोचनेवाले, इच्छा करनेवाले मन नहीं हो। यदि तुम मन होते तो तुम निस्संदेह जैसा चाहते वैसा कर सकते। यदि तुम सचमुच मन होते तो तुम शरीर के स्थिति-बिन्दु से मन के कार्य की योजना को बदल डालते। किन्तु इच्छा करनेवाले मन तुम हो नहीं। तुम तो वही ईश्वर हो, जो इस संसार में हर एक काम कर रहा है।

मन से ऊपर उठो। मन इच्छा करता है, ये इच्छायें, ये लालसायें तुम हो नहीं।

वह जो पेड़ों को उगाता है, जो चिड़ियों को उड़ाता है, वही तुम हो। ईश्वर तुम हो, तुम ईश्वर हो। ईश्वर तुम्हारा विशेषण नहीं।

प्रश्न—क्या मण्डल, प्रेतमण्डलों का अध्ययन आवश्यक है ?

उत्तर—जिस समय तक तुम्हारे मन में अज्ञान रहता है, तब तक तुम बराबर सब प्रकार के खिलौनों को पसन्द करोगे, भाँति-भाँति के आमोद-प्रमोद चाहोगे। पर जब तुमको सच्चा ज्ञान मिल जायगा तब तुम इस भौतिक जगत् के अथवा मानसिक जगत् के खिलौनों को दूर कर दोगे। जिस समय तक वह ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ है, तुम्हारे लिए इन खिलौनों से खेलने के सिवा और कोई चारा नहीं।

ज्ञान का अर्थ है अज्ञान का सम्पूर्ण नाश! अज्ञान और ज्ञान एक ही सीढ़ी का चढ़ाव-उतार है। अज्ञान सीढ़ी पर नीचे को ओर उतरना है और ज्ञान सीढ़ी पर ऊपर चढ़ना। एक ही चीज़ भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से!

विज्ञान यह सिद्ध करता है कि प्रकाश और अन्धकार भिन्न-भिन्न नहीं, किन्तु एक ही, बिल्कुल एक वस्तु है, अन्तर केवल तीव्रता का है।

एक अँधेरे कमरे में बैठो। कुछ समय के उपरान्त आँख की पुतली फैलती है और तुम देखने लगते हो। जो पहले अन्धकार था, वही प्रकाश बन जाता है।

ज्ञान और अज्ञान एक विरोधी जोड़े के अंग नहीं हैं। उनमें अन्तर केवल तीव्रता का है, स्वरूप का नहीं। जब तक तुम अज्ञान में फँसे रहते हो, तब तक मानो तुम ज्ञान-नसैनी के निचले डंडों पर हो। जिन दिनों तुम इस निचली स्थिति में रहते हो तुम्हें अध्यात्ममण्डल और प्रेतलोक की बातों में बड़ा रस मिलता है, किन्तु जब तुम ऊँचाई पर पहुँच जाते हो, उन्नत हो जाते हो तो ये बातें अपने आप छूट जाती हैं।

प्रश्न—"शान्ति की वाणी" में यह लिखा है कि पंचभूतों की आत्मा और आत्मा की आत्मा कभी नहीं मिल सकती। दोनों में से एक का लोप होना चाहिए। दोनों के लिए एकत्र स्थान नहीं हो सकता। क्या वेदान्त का दृष्टिकोण भी ऐसा ही है?

उत्तर – इस वाक्य में कि पंचभूतों की आत्मा और आत्मा की आत्मा नहीं मिल सकती, राम का विचार है कि पंचभूतों की आत्मा और आत्मा की आत्मा शब्दों से उनसे कोई अन्य अर्थ अपेक्षित होगा, जैसा आप समझते हैं।

पंचभूतों की आत्मा, आत्मसाक्षात्कार होने से पहले जिसका लोप होना आवश्यक है, वह चीज़ है जिसे राम झूठी आत्मा, ऊपरी आत्मा के नाम से पुकारता रहा है. जैसे कि पानी में परिलक्षित होनेवाला प्रतिबिम्ब।

ईश्वर के साथ प्रत्यक्ष ऐक्य का अनुभव करने के लिए उसका नाश आवश्यक है। इस अर्थ में ऊपर की बात सही है। अज्ञानमय विचार-धारा का परित्याग होना ही चाहिए। वह अज्ञान जो तुम्हें शरीर के साथ तदात्म करता है, वह क्षुद्र, अपने आपको उत्तरदायित्वपूर्ण अधिकारी समझनेवाला अहन् पंचभूतों की आत्मा है। सर्वप्रथम इसका नाश और लोप होना अनिवार्य है।

और यदि पंचभूतों की आत्मा और आत्मा की आत्मा इन शब्दों से आप यह समझते हैं कि पंचभूतों की आत्मा यहाँ है और आत्मा की आत्मा कहीं अन्यत्र है, यह कि पंचभूतों की आत्मा एक है और आत्मा का कोई दूसरा स्वरूप है, यह कि वे भिन्न-भिन्न सत्तायें हैं तो यह बात गलत है। पंचभूत और अन्तःकरण दोनों की आत्मा एक है। आत्मा शब्द का उल्टा अर्थ लगाया जाता है। यदि आत्मा शब्द से उसका बोध हो, जिसे दार्शनिक अन्तःकरण कहते हैं तो भी पंचभूत और अन्तःकरण विभिन्न सत्ता, विभिन्न आत्मावाले नहीं। वे बिल्कुल एक ही चीज़ हैं। उनमें तीव्रता-मन्दता का अन्तर है, स्वरूप का नहीं।

विज्ञान ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि पंचभूत और अंतःकरण ठीक एक ही चीज़ हैं। दार्शनिकों ने भी यह दिखाया है कि पंचभूत और जीवन एक ही तत्व हैं।

योरप में पहले पहल लेबनिज़ ने यह दर्शाया था, यद्यपि यह बात भारतवासियों को दस सहस्र वर्ष पहले ही मालूम थी कि परमाणु है गति का केन्द्र मात्र। इसी कल्पना को विज्ञान ने उठाया और सिद्ध कर दिखा दिया। लार्ड कालविन ने भी अपने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण लेख में गणित के सिद्धान्तों के द्वारा यह दर्शाया है कि पंचभूत और शक्ति एक ही चीज़ है। फिर पंचभूत और शक्ति भिन्न-भिन्न कैसे हो सकते हैं?

पर्वतों पर चढ़ो। वहाँ तुम्हें सुन्दरतम दृश्य दिखाई देंगे। वहाँ फूलों की महक है, चिड़ियों की चहक है, निर्झरों की कलकल है और है वायु की सर-सर। ये हैं क्या? क्या ये पंचभूत नहीं हैं? किन्तु वहाँ यही ठोस द्रव्य शक्ति में, विचार में, आनन्द में, ईश्वर-भावना में, मधुर संगीत में, उत्तमोत्तम विचार में परिवर्तित होता रहता है। वहाँ तुम प्रत्यक्ष देखोगे कि बाहरी द्रव्य विचार में परिणत हो जाता है। अब अपने बड़े-बड़े भवनों, जहाजों, नगरों, स्त्रियों और पुरुषों को

देखो। एक समय ये केवल मानसिक विचार मात्र थे। मकान पहले मस्तिष्क में बनाया जाता है और फिर बाहर जगत् में बनता है।

हिमालय में भौतिक पदार्थ मानसिक विचार बन जाते हैं—ठीक उस प्रकार जैसे जल वाष्प में या वाष्प जल में परिवर्तन होता रहता है। इससे क्या सिद्ध होता है? दोनों एक ही हैं। अब यदि पंचभूत मस्तिष्क से पृथक् होते तो न तो भौतिक तत्त्वों पर मस्तिष्क का प्रभाव पड़ता और न उनका, मस्तिष्क पर।

फारसी भाषा में एक सुन्दर कविता है। उसका भावार्थ, मन्तव्य यह है कि आँख के आँसू जैसी पानी की एक बूँद आकाश से नीचे गिरी। वह गिरी और रोने लगी। कारण पूछने पर उसने बताया—ओह, मैं कितनी छोटी, कितनी तुच्छ, बिल्कुल नगण्य हूँ। मैं इतनी छोटी, इतनी अल्प और समुद्र इतना बड़ा, इतना विशाल! मुझे अपनी छुटाई पर रुलाई आती है। उसे समझाया गया। रोओ मत, अपने आपको केवल नाम-रूप के घेरे में मत बाँधो। अपने भीतर देखो, अपने स्वरूप को पहचानो। क्या तुम पानी नहीं हो और समुद्र क्या है? वह पानी नहीं तो है क्या? अपने को देश-काल से परिच्छिन्न मत करो। इस देश-काल से ऊपर उठकर देखो, अपने वास्तविक स्वरूप को समझो। जो चीजें एक ही चीज के बराबर होती हैं, वे आपस में भी बराबर होती हैं। ज्योंही तुम समय के घेरे में बँध जाते हो त्योंही दुख प्रकट होता है। अपने आपको सबसे ऊपर रखो। पंचभूत और अन्तः-करण ही एक नहीं हैं, किन्तु सब कुछ एक है। वास्तविक आत्मा समय से ऊपर है। सारा संसार तुम्हारे भीतर है। जैसे तुम स्वप्न में यह सोचने लगते हो कि तुम कहीं जंगलों में, पहाड़ों में, नदी के तट पर विचरण कर रहे हो, जो तुमसे बाहर हैं, किन्तु यह सब तमाशा सच-मुच होता तो है तुम्हारे ही भीतर। यदि वे सचमुच बाहर होते, तो कमरा ही उनके बोझ से दब जाता, तुम्हारी चारपाई पानी में बह जाती।

इसी प्रकार वेदान्त तुम्हें बतलाता है कि यह सारा संसार तुम्हारे भीतर है, सारा भौतिक और मानसिक जगत् तुम्हारे अन्तर में अवस्थित है और तुम उल्टे सोचते हो कि तुम उसमें रहते हो। जैसे वह महिला जो अपने अँगूठे में शीशा पहने रहती है और उसमें अपना प्रतिबिम्ब देख सोचती है कि वह शीशे में है। कैसी भ्रान्ति है! सो वास्तव में संसार है तो तुम्हारे भीतर। बातचीत दो प्रकार की होती है—एक मस्तिष्क से और एक हृदय से। मस्तिष्क की बातचीत चाहे जब उठाई और चलाई जा सकती है। किन्तु बात जब हृदय से निकलती है तो परिस्थिति बदल जाती है।

सीटियाँ कई प्रकार की होती है। एक मोर की बोली की नकल करती है, दूसरी मुर्गे की बोली की और तीसरी सुअर के आवाज की। तुम जिस किसी सीटी में हवा फूकोगे, उसी की आवाज निकलने लगेगी, चाहे जिसकी बोली सुनो। किन्तु क्या तुम कभी जीता-जागते मोर को, जीते-जागते सुअर को भी आज्ञा दे सकते हो कि वह तुम्हें अपनी बोली सुनाये। अथवा यदि मुर्गा बाँग देता है, सुअर चों-चों करता है तो क्या तुम उन्हें रोक सकते हो? वे किसी देश और काल से बँधे हुए नहीं हैं। हिमालय में संगीत बहता है और विचार में परिणत होता है, फिर वहाँ से कहाँ जाता है, कौन जाने! क्या वह सचमुच नष्ट हो गया? नहीं, कभी नहीं, वह नष्ट नहीं होता, वृक्ष उसकी रक्षा करते हैं, नदियाँ उसे साथ बहाती हैं, पृथ्वी उसका पालन करती है। वह वायुमण्डल में विचरण करता है। वह निरन्तर इस ब्रह्माण्ड में उस समय तक चक्कर काटता रहता है, जब तक उसे ग्रहण करने योग्य कोई आदमी उसे नहीं मिल जाता।

विचारमात्र ईश्वर से उत्पन्न होता है। विचार इस भिन्न, दिखावटी, भार ढोनेवाली, अधिकार-लोलुप क्षुद्रात्मा से प्रकट नहीं होता। वह तो तभी प्रादुर्भूत होता है, जब इस क्षुद्रात्मा का लोप होता है।

राम के अनुसार प्रत्येक पुस्तक दिव्य प्रेरणा से निर्मित होती है, प्रत्येक पुस्तक ईश्वर की पुस्तक है, न केवल बाइबिल, वरन् सभी पुस्तकें, इमरसन की पुस्तकें, डारविन और शेक्सपियर की पुस्तकें उसी की प्रेरणा के फल हैं। सभी उसके द्वारा प्रेरित होती हैं, जैसे वेद। क्योंकि कभी कोई ग्रन्थ बन ही नहीं सकता, जब तक मनुष्य अपना क्षुद्र अहम् उतार-कर फेंक नहीं देता।

प्रश्न—क्या कोई विवाहित पुरुष आत्मसाक्षात्कार की अभिलाषा करता है? क्या उसे आत्मानुभाव हो सकता है?

उत्तर—यह सिद्ध किया जा सकता है कि वेदान्त सन्यासियों, वैरागियों की अपेक्षा विवाहित पुरुषों के अधिक अनुकूल है। वह ऐसे गृहस्थों के ही अधिक उपयुक्त है, न कि उनके जो हिमालय में रहते हैं।

प्रत्येक परिवार में पति पत्नी के आनन्द में वृद्धि करना चाहता है और पत्नी पति के आनन्द में। हर एक घोर परिश्रम भी करता है, किन्तु परिणाम क्या होता है? दोनों एक दूसरे के पतन का कारण बनते हैं। इसका दोष किसे दिया जाय? क्या उनके घोर प्रयत्नों को? नहीं? दोषी यदि कोई है तो उनका अज्ञान। वे यह नहीं जानते कि उनके साथी का सुख है किसमें? और यही अज्ञान उनके दुखों और विप-त्तियों का कारण बनता है।

लोग सोचते हैं कि पति और पत्नी एक दूसरे की निम्न कामजन्य वासनाओं को जाग्रत् करके और उनकी पूर्ति करके ही एक दूसरे के आनन्द में वृद्धि करते है। इस प्रकार जब वे एक दूसरे के अहम्-भाव की पुष्टि मे सहायक बनते हैं तब उनके विचार से उनका कल्याण होता है। किन्तु कल्याण का उनका यह विचार अज्ञान जन्य है। पहले इस अज्ञान को दूर करना चाहिए और तभी प्रत्येक घर आनन्द का प्रासाद बन जाता है।

यह याद रक्खो—हम ईश्वर को नहीं बदल सकते और न हम प्रकृति को बदल सकते हैं। प्रकृति का नियम है, विधाता का आदेश है कि हम सबको ब्रह्मभावना में जाग्रत् होना होगा। सांसारिक मनुष्यों की मूर्खतायें, दुनियादारों की बुद्धिमानी अंत में एक ही दिशा में अग्रसर हो रही है और वह दिशा है ईश्वर की ओर, मनुष्य और ईश्वर की एकता और तादात्म्यता की ओर। तलवार की नोक पर प्रत्येक मनुष्य को वेदान्त सीखना पड़ेगा, वेदान्ती होना होगा।

वेदान्त के विश्वास के लिए तलवार और अग्नि की आवश्यकता नहीं है। प्रकृति के नियम ही ऐसे बने हैं, वे मानो उस परमेश्वर की बृहत् सैन्य के सैनिक हैं, जो बलपूर्वक तुम्हें आत्मसाक्षात् के पथ पर ढकेलते रहते हैं। तुम्हें उस राह पर आना होगा, अन्यत्र भटक नहीं सकते।

यदि तुम यह जान लो कि तुम्हारे साथी का यथार्थ हित किस बात में है तो तुम स्वयं प्रकृति के नियमों के अनुसार काम करने लगोगे। प्रत्येक भवन, प्रत्येक गंदी कोठरी उसका मंदिर बन जायगा।

प्रकृति के नियमों के अनुसार तुम्हारा वास्तविक कल्याण प्रभु के साथ व्यावहारिक एकता प्राप्त करने में है. तुम्हारा एक-मात्र श्रेय है स्वतन्त्र हो जाने में और तुम स्वतन्त्र तभी हो सकते हो, जब तुम अपने आपको परमेश्वर, सर्वशक्तिमान्, अनन्त और सर्वज्ञ अनुभव करने लगो। जैसा तुम अभी सोचा करते हो कि मैं अमुक-अमुक माता-पिता का पुत्र हूँ, जब तुम ठीक उसी प्रकार भगवान् से तदात्मीयता प्राप्त कर लो, दुनिया की बुद्धि को लौट दो, अपने ब्रह्मत्व को प्रत्यक्ष कर लो, वह तुम्हारे लिए व्यावहारिक हो जाय, जैसा आजकल अन्य सांसारिक व्यवहार हो रहा है, एक शब्द में, जब संसार तुम्हारे लिए स्वप्न जैसा बन जाय, उसकी समस्यायें भूतकाल की घटनायें हो जायँ, तब समझो कि आत्मसाक्षात्कार के लक्ष्य की पूर्ति हुई।

अब यदि यह बात पूछो कि हमारी विपत्तियाँ और हमारी चिन्तायें किस प्रकार हमें उस दिशा की ओर ले जाती हैं तो यह तथ्य गणित की यथार्थता के साथ तुम्हारे दिल में बैठाया जा सकता है कि प्रकृति की सम्पूर्ण योजना का एकमात्र उद्देश इतना है कि तुम ऊँचे उठकर ब्रह्म-भावना में निवास करने लगो। उस आदर्श की अपूर्ति ही से हमें दुख की प्राप्ति होती है। उस आदर्श की सितह पर आ जाओ, इतना ऊपर उठ जाओ और फिर तुम्हारे लिए कोई पाप नहीं रह जाता। तुम सब बातों से ऊपर हो जाते हो। तुम पूर्ण, पूर्ण ब्रह्म हो।

साक्षात्कार एक उछाल में प्राप्त नहीं किया जा सकता। समय की आवश्यकता होती है। इसी शरीर में आने के लिए, विकास के इस स्तर तक पहुँचने में ही हम लोगों को करोड़ों वर्ष लगे हैं।

पूर्व जन्मों में किसी समय तुम पौधे के रूप में पैदा हुए थे, किसी समय अफ्रीका के गुलामों के यहाँ तुमने जन्म लिया था और किसी समय तुम ने एक देश और जाति विशेष को गौरवान्वित किया और किसी समय किसी दूसरे देश और जाति को। इसी तरह उन जन्मों का क्रम वर्तमान समय तक चलता आया है।

मकान को नष्ट करने में भी समय लगता है। किन्तु नष्ट करने में उतना समय नहीं लगता जितना कि उसे बनाने में। यदि तुम्हारे पास यथेष्ट परिमाण में बारूद या दाहक तत्व हो, यदि तुममें यथेष्ट शक्ति हो तो तुम उसे तुरन्त गिरा सकते हो। किन्तु बहुतों के पास वही बारूद—उड़ानेवाली बारूद नहीं होती।

अपनी स्त्री और बाल-बच्चों के साथ रहते हुए भी यदि तुम इस दर्शन शास्त्र के पूरे-पूरे पण्डित बन जाओ, यदि तुम इसे केवल मस्तिष्क की सहायता से ही स्वायत्त कर लो, तो वेदान्त कहता है कि तुम्हारी मुक्ति के मार्ग में कोई बाधा नहीं। तुम स्वतंत्र हो, तुम्हें फिर आवा-गमन का कष्ट न भोगना पड़ेगा। इस जीवन में भगवान् के अनुभव

के लिए तुम्हें विभिन्न तीन मार्गों का अवलम्बन न करना पड़ेगा। जिन्होंने वेदान्त का बौद्धिक निश्चय प्राप्त कर लिया है, उनको शास्त्रों के अनुसार मृत्यु के अनन्तर अनेक प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं। किन्तु आवश्यक तो यही है कि उसे कार्य और विचार की माया में भी उतारा जाय। हम उसी का व्यवहार करें और उसी का अनुभव करें।

लोग कहते हैं कि प्राचीन इंजील ने कर्मों के द्वारा मुक्ति का वादा किया है और नूतन इंजील ने विश्वास के द्वारा। किन्तु स्वर्ग, सच्चिदानन्द तो केवल ज्ञान द्वारा ही प्राप्त होता है।

अकेले कर्मों से मुक्ति नहीं मिलती। ईसामसीह में विश्वास करके भी मुक्ति नहीं प्राप्त की जा सकती। मोक्ष तो अपनी आत्मा के द्वारा ही प्राप्त होती है। पहले उसी अपनी आत्मा को समझना होगा और उसी क्षण तुम मुक्त हो।

ज्ञान दो प्रकार का है—एक बुद्धि के द्वारा और दूसरा हृदय के द्वारा प्राप्त होता है।

हृदय के द्वारा वास्तविक आत्मा का प्रत्यक्ष कर लेना ज्ञान कहलाता है। जीते-जागते विश्वास अथवा जीते-जागते ज्ञान से मुक्ति होती है। इसे ही प्राप्त करना होगा। उसका विस्मरण होते ही निराशा तुम्हारे सामने आ खड़ी होती है। अतः उसे प्राप्त करो।

हमारी मामूली गृहस्थी का क्या हाल है? पति और पत्नी को एक दूसरे की मुक्ति में सहायक बनना होगा। वे आत्मा के वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति में एक दूसरे की सहायता करेंगे। यदि आप लोग ऐसा करने रहें, यदि पत्नी अपने पति को आत्मा का जीता-जागता विश्वास, जीता-जागता ज्ञान प्राप्त कराने में सहायक होती है, तो वह पति के लिए ईसा-मसीह, मुक्तिदाता बन जाती है। ऐसे ही पति भी पत्नी के लिए बन सकता है। किन्तु हाल यह है कि पति पत्नी के लिए और पत्नी पति के लिए ईसामसीह के स्थान में जूडास (संहारक) बना हुआ है। तुम्हारा अपना

अज्ञान ही तुम्हें नीचे घसीटता है, पारिवारिक संस्था में ऐसी कोई बात नहीं जो तुम्हें नीचे घसीटे। इन सम्बन्धों के अनुचित प्रयोग से ही तुम्हारे मार्ग में बाधायें खड़ी होती हैं। किसी भी गृहस्थी को देखो, पत्नी जूडास इसकेरियट का अभिनय करती मिलेगी, उसका, जिसने ईसामसीह को धोखा दिया था। वह चाहती है कि उसका पति चाँदी के ३० टुकड़ों के पीछे अपनी सच्ची आत्मा को बेच डाले। वह स्वयं कुछ चमकीले आभूषणों के पीछे, सजावट की छोटी-मोटी चीजों के पीछे जिनसे उसके अहंकार की तुष्टि होती है, अपनी आत्मा को बेचने में संकोच नहीं करती। यही हाल पतियों का है। चाहिए तो यह कि पत्नी पति को बिल्कुल स्वतंत्र कर दे, अपनी चिन्ता से मुक्त कर दे और इसी प्रकार पति भी पत्नी को बन्धन-मुक्त करे। पर यहाँ तो पति पत्नी में यह विश्वास जमाना चाहता है कि वह उसकी है, केवल उसकी और इसी भाँति पत्नी पति को याद दिलाती रहती है कि वह उसका है, केवल उसका। ऐसी स्थिति में तुरन्त ही झगड़े उठ खड़े होते हैं। वह उसे गुलाम बनाना चाहती है और वह उसे अपना अनुचर बनाना चाहता है।

यह पहले समझाया जा चुका है कि यदि तुम बैल को रस्सी से बाँधो और उस रस्सी के द्वारा उसे अपने वश में रक्खो, तो न केवल बैल तुम्हारे बन्धन में रहता है, वरन् तुम भी बैल के बन्धन में रहते हो। तुम्हारी सम्पत्ति, तुम्हारी धन-दौलत—सब की सब तुम्हें बन्धन में डालनेवाली हैं।

वेदान्त के अनुसार तो प्रत्येक गृह स्वर्गीय सदन बनाया जा सकता है, केवल एक शर्त है कि हम दूसरों पर अधिकार जमाने की इच्छा के बदले, त्याग की, देने की भावना का अभ्यास कर लें।

पति और पत्नी दोनों को समान रूप से अपनी-अपनी शक्ति भर एक दूसरे के हित-साधन के लिए संचेष्ट रहना चाहिए। मांगो कुछ

नहीं, आशा भी कुछ मत करो और अपने आप सभी वस्तुयें तुम्हारे पास आ जुटेंगी। तुम दिव्यानन्द से भर जाओगे।

तुम चाहते और कहते हो—मुझे यह चीज़ मिले, मुझे वह चीज़ मिले, मुझे अमुक-अमुक वस्तुओं की आवश्यकता है। वे चीज़ें तुम्हें मिल भी जाती हैं। अब यदि वे चीजें तुमसे छिन जावें तो तुम्हारी क्या हालत होगी, तुम पुनः चिन्ताग्रस्त हो जाओगे। इच्छा रोग है। उसीके कारण तुम्हें संशयावस्था में रहना पड़ता है।

प्रायः ऐसा होता है कि जब हमें इच्छित वस्तु की प्राप्ति हो जाती है तो हमें आनन्द का अनुभव होता है। इस थोड़े से आनन्द की प्राप्ति के लिए हमें संशय का घोर दलदल पार करना पड़ता है और फिर भी सुख-आनन्द मिलता है थोड़ा सा, थोड़ी देर के लिए।

इसके विरुद्ध यदि इच्छा का काँटा तुम्हारे हृदय से निकल जाय, तुम्हें आशा न सताये, तुम्हें त्याग का अभ्यास हो जाय तो तुम्हें देने का मज़ा मिल जाय। आनन्द तो हमें उसी बात में आने लगता है, जिसमें हम उसे मान लेते हैं। तो बस, लेने में, पाने में उसकी कल्पना मत करो। देने में, छोड़ने में ही उसका अनुभव करना सीख लो। त्याग से सदैव आनन्द मिलता है।

जब तुम अपने धर्म-मन्दिर में ५०) दान करते हो, तब तुम्हारे हृदय को शान्ति मिलती है।

दाता के पद पर अवस्थित हो जाओ और तुम स्वयं आनन्द की मूर्ति बन जाओगे।

गृहस्थाश्रम में यदि आनन्द का उपभोग करना चाहते हो तो उसका रहस्य केवल इतना है कि पति और पत्नी दोनों दाता का आसन ग्रहण करें, कभी किसी चीज़ की आशा न करें और बस, वे दोनों आनन्दमग्न रहेंगे। अब प्रश्न हो सकता है, ऐसी कौन सी चीज़ है जिसका वे निरन्तर वितरण करते रहें? तो वह चीज़ है ज्ञान, शुद्ध ज्ञान

जिसे वे शक्ति भर लुटा सकते हैं। तुम उसी स्थिति में सच्चे पति अथवा पत्नी बन सकते हो जब तुम सदैव एक ऐसी दिशा में काम करो जिससे दूसरों को शुद्ध होने में सहायता मिले। यही नियम है।

किसी समय भारतवर्ष में शिखरध्वज नाम का एक राजा राज्य करता था। वह एक शक्तिसम्पन्न महान् नरेश था। उसे आत्मसाक्षात्कार करने का शौक हुआ। और इस उद्देश से उसने अपना पारिवारिक जीवन त्यागने का संकल्प किया।

उसकी पत्नी का नाम था चुडाला। वह उसे उपदेश करना चाहती थी किन्तु वह उसकी बात न सुनता था, क्योंकि उसकी दृष्टि में उसका कोई मूल्य न था।

अन्त में उसने अपना राज-पाट छोड़ दिया और सन्यास ले लिया। उसकी पत्नी उसके स्थान में राज्य करने लगी। वह हिमालय में चला गया और वहाँ दो-एक वर्ष उसने एकांत में काटे।

इस बीच में उसकी स्त्री, रानी ने एक ऐसा उपाय सोचा जिससे उसके पति को सच्चा सुख मिले। सो एक दिन उसने भी सन्यासी का वेश धारण कर लिया और वहाँ पहुँची, जहाँ उसका पति एकांत में रहता था। उसने देखा—उसका पति ध्यान में डूबा है। वह उसके पास खड़ी रही। जब उसकी आँख खुली तो संन्यासी को सामने देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसे कोई बड़ा भारी महात्मा समझकर उसने उसके ऊपर पुष्प-वर्षा की।

वह परमानन्द की अवस्था में थी। राजा ने कहा—मेरा निश्चय है कि साक्षात् भगवान् ही मेरा उद्धार करने के लिए प्रकट हुए हैं। उसने उत्तर में सिर हिलाकर कहा—हाँ, हाँ। फिर राजा ने उपदेश के लिए प्रार्थना की और उसने समझाना प्रारम्भ किया—ऐ राजन्! यदि तुम परमानंद चाहते हो तो तुम्हें प्रत्येक वस्तु का त्याग करना होगा। यह सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ और कहने लगा—भगवन्, मैंने

तो अपना राज-पाट; स्त्री और बाल-बच्चे, सब कुछ पहले ही त्याग दिया है। वह बोली—तुमने तो कुछ भी नहीं छोड़ा है।

राजा की समझ में कुछ भी न आया और पूछने लगा—तो क्या मैं संन्यासी नहीं हूँ? क्या मैंने अपना राज-पाट और घर-द्वार नहीं छोड़ा है? वह बोली—यह ठीक है! पर अब क्या सचमुच तुम्हारे पास कोई चीज़ नहीं है। उसने कहा—हाँ, है यह झोपड़ी, यह कमण्डल और यह दण्ड। 'तब तुम कैसे सर्वस्व त्यागी हो सकते हो,' तुरन्त उसने उत्तर दिया। जब तक तुम्हारे पास एक भी चीज़ शेष है तब तक तुम चीज़ के बन्धन में बँधे ही रहोगे। घात और प्रतिघात सदैव बराबर, विरोधी होते हैं, यदि किसी चीज़ को अपने पास रक्खोगे तो वह भी तुम पर अधिकार रक्खेगी। बस, उसने तुरन्त ही झोपड़ी में आग लगा दी, दण्ड और कमण्डल नदी में फेंक दिये और चिल्लाकर कहने लगा—लो, अब मैं पक्का संन्यासी हो गया। रानी ने उत्तर दिया—नहीं, केवल इन वस्तुओं के त्याग से तुम संन्यासी नहीं हो सकते। राजन्, तुमने झोपड़ी बेशक जला दी है, किन्तु क्या साढ़े तीन हाथ की पंचभौतिक देह अब भी तुम्हारे पास नहीं है। इन चीज़ों को नष्ट करने से तुम्हें क्या मिला? तुमने गलती की, उनके नाश से तुम्हें कोई लाभ नहीं हो सकता। जो कुछ तुम्हारे पास उस समय था, वह अब भी है। साढ़े तीन हाथ लम्बी-चौड़ी देह! उसे लेटने के लिए कोई न कोई स्थान तो चाहना ही पड़ेगा! राजा सोचने लगा और देह को जला डालने का निश्चय किया। बहुत-सा ईंधन इकट्ठा किया और अग्नि लगाकर कूदने ही वाला था कि स्त्री ने उसे रोका और समझाने लगी—ऐ राजन्! जब तुम्हारा शरीर जल जायगा, तब क्या शेष बचेगा? उसने कहा—राख। 'किसकी राख'? उसने पूछा। 'मेरी राख।' तब रानी बोली—लो, शरीर के जलने पर राख तो तुम्हारी बनी ही रहेगी, उस समय भी तुम पूरे संन्यासी नहीं हो सकते। राजा सोचता रहा—फिर मैं क्या छोड़ूँ, कैसे छोड़ूँ?

रानी ने पूछा—यह शरीर किसका है? उसने कहा—मेरा। 'अच्छा, इसे छोड़ दो।' 'यह मन किसका है?' 'मेरा है।' 'अच्छा, इसे भी छोड़ दो।' राजा चकरा गया। उसने पूछना शुरू किया—पहले मुझे बताइये—मैं हूँ क्या। यदि मैं मन नहीं, तो मन से बाहर की कोई चीज़ हूँ, यदि मैं देह नहीं, तो देह से अतिरिक्त कोई चीज़ हूं। राजा सोचता रहा, सोचता रहा और अन्तिम परिणाम यह हुआ कि राजा को आत्मसाक्षात्कार हो गया। उसने अनुभव किया—मैं ही देवताओं का देवता, प्रभुओं का परम प्रभु, अनन्त आत्मा, सच्चिदानन्द हूँ, उसे ज्ञान हो गया और कहने लगा—यद्यपि अन्य प्रत्येक वस्तु का त्याग कर सकता हूँ, किंतु मेरा सच्चिदानन्द स्वरूप मुझसे त्यागा नहीं जा सकता।

कहावत है कि दानशीलता पहले घर से शुरू होती है। इसलिए त्याग भी उन चीजों से प्रारम्भ होना चाहिए, जो हमें सबसे अधिक प्यारी, सबसे अधिक निकटवर्ती हों। सबसे पहले इस मिथ्या अहम् का नम्बर आता है, उसे हमें त्यागना होगा। यह विचार 'मैं यह काम करता हूं', 'मैं यह काम करता हूं,' 'मैं कर्त्ता हूं' 'मैं भोक्ता हूं'—ऐसे विचार जिनके द्वारा हममें मिथ्या व्यक्तित्व का प्रादुर्भाव होता है—सदा के लिए छोड़ देना चाहिए। इस विचार को ग्रहण कर लो, स्वीकार कर लो, चाहे तुम उन्हें सिद्ध कर सको या न सिद्ध कर सको। हर हालत में तुम्हें ऐसे विचारों को छोड़ ही देना पड़ेगा कि यह मेरी स्त्री है, मेरा शरीर है, मेरा मन है, मेरे बालबच्चे हैं। जब तक इन विचारों का त्याग न किया जायगा तब तक आत्म-साक्षात् नहीं हो सकता।

जंगलों में निवास भले ही करने लगो किंतु फिर भी तुम सच्चे अर्थ में संन्यासी नहीं हो सकते, क्योंकि वहाँ भी कुछ न कुछ करने, भोगने की भावना तुम्हारे मन में विद्यमान रहती है। साधुओं को भी प्रायः ऐसे विचार सताया करते हैं और कभी-कभी राजा लोग राजदरबार में रहते हुए भी इन विचारों से मुक्त देखे जाते हैं।

सच्चा संन्यासी वह है जो इस क्षुद्र अहम् के, पसारा फैलानेवाली आत्मा, इस दिखावटी आत्मा के चक्कर से मुक्त रहता है। क्या हम कभी ऐसे मनुष्य को संन्यासी कह सकते हैं, जो कर्त्ता-भोक्ता के भाव से अथवा मेरे-तेरे के चक्र से मुक्त नहीं है? कदापि नहीं। जब एक बार वह ज्ञान का अनुभव करता है, सत्य को प्रत्यक्ष भान करता है, यह जान लेता है कि मैं ही अनन्त, परम तत्त्व हूँ, मैं ही इस अखिल विश्व का शासक, संचालक और स्वामी हूँ। जब उसे ऐसी अनुभूति होती है तब वह सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, जल, वायु आदि सबसे तदात्म हो जाता है, क्योंकि वे उसी के प्रादुर्भावमात्र तो हैं।

कहानी में आगे है कि इस प्रकार रानी उस राजा के साथ कुछ दिनों बनी रही और एक दिन ऐसा आया, जब उसने अपने योगी-वेश को उतार फेंका और राजा को निश्चय करा दिया कि वह उसी की रानी है, जिसने अपने पुराने पति की खातिर उसके साथ इस प्रकार प्रवंचना की है और फिर भी कुछ दिनों तक और उसके साथ बनी रही।

अन्त में एक दिन वह राजा के सामने पहुँची और हाथ जोड़कर राजा से प्रार्थना करने लगी—ऐ राजन्, अब आप मुझे क्षमा कर दें। मैंने बड़ी दुष्टता की है, मैंने आपको धोखा दिया। मेरी बारम्बार प्रार्थना है कि आप मुझे क्षमा प्रदान करें। राजा ने उसकी तरफ देखा और बोला—ऐ लड़की! इस अनुनय-विनय से क्या प्रयोजन है? तुम्हारा यह दुर्व्यवहार मुझे अवश्य कुछ दुख देता, यदि मैं इस शरीर में विश्वास करता होता, यदि मैं अज्ञान के वशीभूत होता, यदि मेरा विश्वास होता कि मैं इस देह का स्वामी हूँ और समझता कि तुम मेरी हो। यदि मैं ऐसी इच्छा का शिकार होता, यदि मैं अधिकार-लोलुप अहम् भाव के वशीभूत होता, यदि मुझे कोई ऐसा रोग होता, तो मुझे अवश्य परेशानी होती, मुझे बड़ा दुख होता। किंतु यहाँ तो दशा यह है कि मेरे शरीर में अब पति के लिए स्थान नहीं, मेरे हाथ में कोई

रस्सी नहीं, जिससे मैं किसी को बाँधू और स्वयं किसी के बन्धन में पड़ूँ। न कोई मेरा है और न मैं किसी का हूँ। मैं तो सर्वथा अनन्त हूँ। ऐ लड़की! खूब सोच-विचार कर देख, तू भी शुद्ध पवित्र हो सकती है। एक तू है, दुनिया में और भी बहुत सी लड़कियाँ हैं, जो अपवित्र हो सकती हैं। किंतु सब की सब मेरी हैं। मैं विश्व का प्रकाश हूँ, मैं ही इस अखिल विश्व का स्वामी हूँ, फिर मैं क्यों तो क्षुब्ध हूँ, और क्यों प्रसन्न हूँ।

यदि तुम्हारा कोई पड़ोसी ऐसा अपराध या पाप करता है तो आपको दुख नहीं होता, किंतु यदि आपकी स्त्री कोई अपराध करती है, ओह, तब आपके दुख का ठिकाना नहीं रहता। यह सब इसी अधिकार-लोलुप अहंकार-विमूढ आत्मा के कारण होता है।

रानी पुनः अपने राज्य में चली गई और फिर कुछ दिनों के बाद राजा के पास आकर कहने लगी— राजन्! आप साक्षात् ईश्वर हैं! अतः आप कहाँ रहते हैं और कहाँ नहीं रहते हैं? आपको इन बातों से क्या? क्या यह हिमालय पर्वत आपका है और राज्य के राज-प्रासाद आपके नहीं? राजा ने उत्तर दिया—वह तो सब जगह वर्तमान है। सारे शरीर मेरे हैं। जैसे यह शरीर है, वैसे ही और शरीर भी मेरे हैं। ज्ञानी की दृष्टि शरीर से ऊपर उठ जाती है, शरीर तो उसे दिखाई दिया करते हैं, जिसे सम्पूर्ण सत्य का ज्ञान नहीं होता।

यह सारा संसार तुम्हारे ही विचारों की सृष्टि है। यह बात इतनी सच्ची है जैसे गणित की कोई भी सही गणना, दो और दो—चार। यह बड़े साहस की घोषणा है किन्तु है अक्षरशः सत्य।

ये लोग फिर राजा को राजसिंहासन पर ले गये। वह पुनः प्रमोद-प्रमोद के बीच, सभी प्रकार की दिखावटी चीजों के बीच रहने लगा किंतु उससे क्या? वह तो था पवित्र, शुद्ध, उसे उसकी इन्द्रियाँ धोखा न दे सकती थीं, वह था उनके अज्ञान से ऊपर। इस प्रकार वह २६

वर्ष तक राज्य करता रहा। किंतु वह था क्या ? न राजा और न सम्राट्, वरन् साक्षात् ईश्वर ! यही सच्चा संन्यास है !

उसके लिए सोना-चाँदी और कंकड़-पत्थर, काँटेदार गुलाब और मखमली गद्दे, रेशमी तकिये और पत्थर की चट्टानें, वे भव्य राज-प्रासाद एवं घास-फूस की झोपड़ियाँ—सब बराबर थीं।

लोग कहते हैं—इसे मत छुओ, उसे मत छुओ। भारतवर्ष में उपदेश यह है कि आसक्तियों से ऊपर रहो और साथ ही साथ न किसी से घृणा करो और न द्वेष !

भारतवर्ष में साधुवृत्ति एक प्रकार की सीढ़ी जैसी मानी जाती है, जो सत्य को प्रत्यक्ष करने में सहायक होती है। सच्चा साक्षात्कार तभी होता है जब तुम ब्रह्म का अनुभव करते हो। कृत्रिम त्याग से काम नहीं चल सकता। तुमने देख लिया कि उस सुन्दर रानी के द्वारा उस शक्तिशाली सम्राट् को अपने ही में ब्रह्म का साक्षात्कार हो गया। यही व्यवस्था है जिसका अवलंम्बन करते हुए विवाहित स्त्री-पुरुषों को एक साथ रहना चाहिए। तभी वे एक दूसरे के साक्षात्कार में सहायक हो सकते हैं। तब उनके घर वस्तुतः स्वर्गीय सदन, साक्षात् स्वर्ग बन जायेंगे।

ॐ ॐ ॐ

